बिखरे मोती

बिखरे मोती

मुनिभूषण श्री वल्लभदत्त विजयजी महाराज

की

जीवन कथा

लेखक एवं सम्पादक

जवाहरचन्द्र पाटनी

एम. ए. (हिन्दी, अंग्रेजी)

हिन्दी विभागाध्यक्ष

श्री पार्श्वनाथ उम्मेद महाविद्यालय

फालना

वितरक :
कलाधर शर्मा
करेन्ट बुक कम्पनी
जयपुर–४

प्राप्तिस्थान :
श्री वल्लभ विहार
श्री पार्श्वनाथ उम्मेद महाविद्यालय
फालना (राजस्थान)

मूल्य : पांच रुपये
१९६९

मुद्रक :
जयपुर प्रिण्टर्स
जयपुर–१

नमो लोए सव्व-साहूणं

समर्पण

मैं

मुनि-चरणों में

यह

भक्ति-पुष्प

सस्नेह

समर्पित करता हूँ।

— जवाहर

दो शब्द
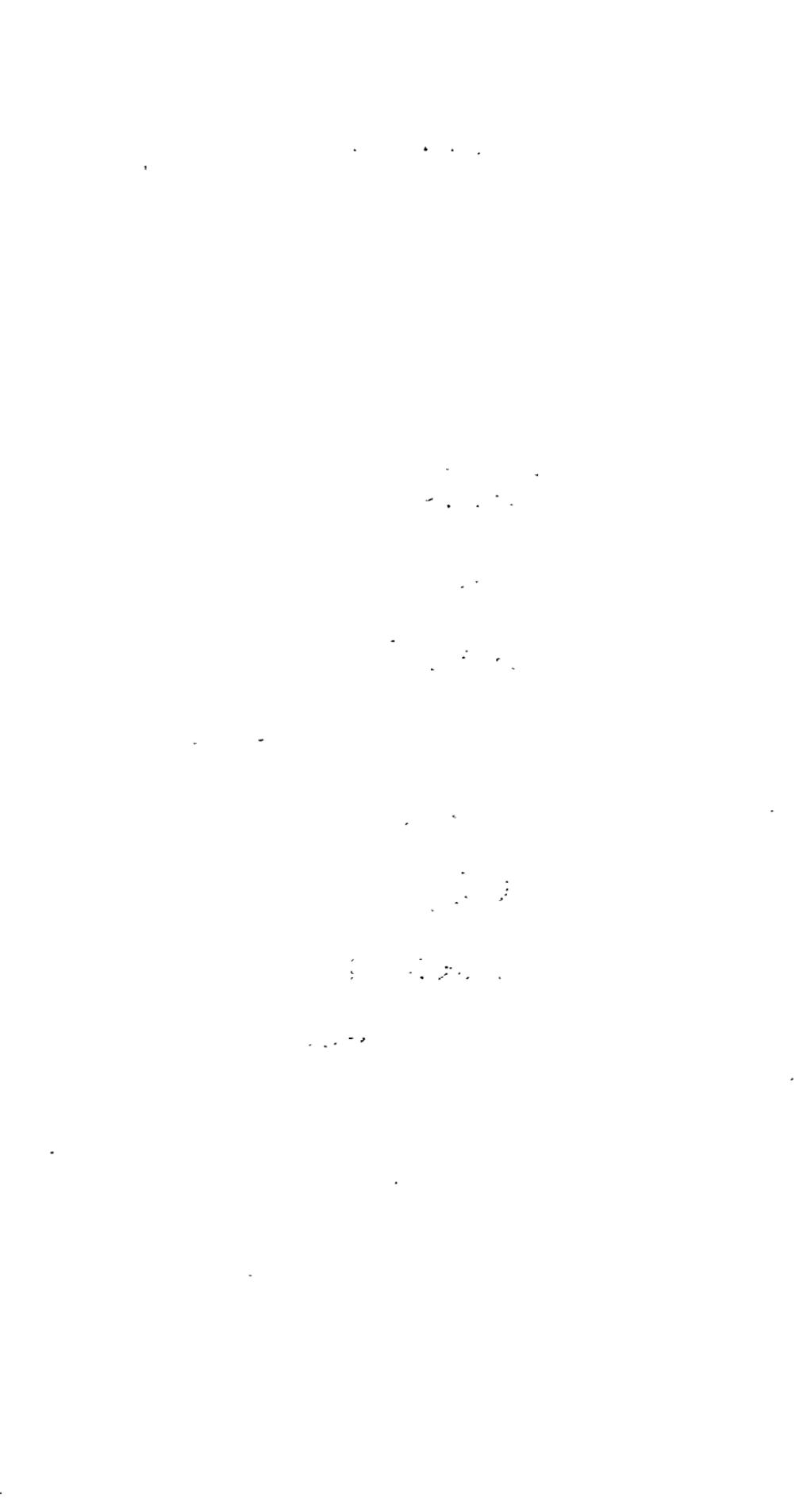
'बिखरे मोती' आपके हाथ में है। पुस्तक के नाम से यह स्पष्ट है कि इसमें भिन्न-भिन्न आभा वाले मोतियों का उल्लेख किया गया है। ये मोती हैं मुनिराज श्री वल्लभदत्त विजयजी महाराज साहेब के विभिन्न कार्य-कलाप जो यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। उनके व्यक्तित्व के गुण भी मोती के समान ही उज्ज्वल हैं अतः यह नामकरण मुझे उपयुक्त लगा।

मैं समझता हूं कि मनुष्य का जीवन मोती के समान है। यदि उसमें मोती के समान कान्ति नही तो वह व्यर्थ है। वह कान्ति है उसका सदाशय। इसीसे वह चमकता है। उसकी चमक अंधकार को दूर करती है। मुनिराजजी का जीवन भी अनेक सदाशयों से अलंकृत है। उसमें त्याग की कान्ति है, मानवता का लावण्य है और पीड़ित मानवता के लिए कुछ करने की तड़पन है। उनमें संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता नहीं हैं। ये तो कांच के गुण हैं — मोती के नहीं।

उनके विविध कार्य-कलापों पर यदि दृष्टिपात करें तो हमें ज्ञात होता है कि वे उपेक्षित अंग को संवारने एवं सुधारने के लिए विशेष प्रयत्नशील रहते हैं। श्रावक-श्राविका क्षेत्रों को सुपुष्ट बनाने के लिए वे धनवानों को आगे आने के लिए उपदेश देते है। साधर्मिक-वात्सल्य का वास्तविक अर्थ उनकी दृष्टि में है — निर्धन एवं पिछड़े भाई-बहिनों की सहायता करना।

ज्ञान के प्रचार एवं प्रसार के लिए वे सतत प्रयत्नशील हैं। बिना ज्ञान-दीप के उजाला कैसे होगा? जो दीप गुरुदेव वल्लभ सूरिजी ने जलाये — वे जलते रहें और ज्ञान-प्रकाश फैलाकर अंतस् के अंधकार को दूर करें। ये दीप बुझने न पावें, इनको बराबर तेल मिलता रहे, इनकी बत्ती कटी-छंटी हो जिससे सुन्दर ज्योति विकीर्ण हो — ऐसी सात्विक चिंताएं मुनिराजजी को सतत रहती है और वे कर्मवीर की तरह कार्य करने का संकल्प कर चुके हैं।

जिन चमत्कारों एवं वचन-सिद्धियों की चर्चा मैंने 'कल्प-पुष्प' शीर्षक खंड में की है उनका भी अपना विज्ञान है। साधना के द्वारा मनुष्य ऐसी परामनस् की अवस्था तक पहुंच जाता है जो भविष्य में होने वाली घटना के संबंध में ठीक बता सकता है। योगदर्शन ऐसे संवेदनशील मनस् के

अस्तित्व में विश्वास करता है। डॉ. एच. एन. बनर्जी ने अपने सारगर्भित लेख 'पुनर्जन्म कितने प्रकार का' के अन्तर्गत ऐसे दिव्य मनस् के बारे में लिखा है –

"वह पृथ्वी और नक्षत्र-मंडल में विचरण करने वाली असंख्य ज्योतिर्मय आत्माओं के साथ सम्पर्क स्थापित कर सकता है। उसका हृदय एक सशक्त रेडियो बन जाता है तथा आध्यात्मिक चक्षु (तृतीय नेत्र) माइक्रोफोन।" हो सकता है मुनिराजजी की भविष्यवाणियां दिव्यात्मा का सहज एवं स्वाभाविक स्फुरण हों।

सन्तों की वाणी के अनुसार प्रकृति अपना कार्य करती है किन्तु सन्त त्यागी एवं निःस्पृही होने चाहिए। यद्यपि मुनिराजजी की भविष्यवाणियों से उनके रहस्यात्मक जीवन की कल्पना होती है फिर भी उन्होंने स्पष्ट कहा है, "मैं समभावरूपी चमत्कार की खोज में हूँ।" उनका यह कथन मन में पवित्रता भर देता है। यह उनके निश्छल व्यक्तित्व का आभास देता है।

उनकी आत्मकथा अपने ढंग की निराली है। उसमें सच्चाई है। बचपन के शाकाहारी एवं अहिंसक संस्कार उनके भावी समुज्ज्वल एवं उन्नत जीवन का निर्माण करते हैं। मनुष्य यात्री की तरह टेढ़े-मेढ़े, ऊबड़-खावड़ मार्गों पर चलता हुआ कहीं विश्राम करता है – कहीं चलता है और फिर उसे कोई डेरा मिल जाता है। मुनिराजजी ने अपनी आत्मकथा में भटकते हुए पथिक की तरह अपने जीवन को बताया है। उन्हें कष्ट भी झेलने पड़े किन्तु त्याग की अग्नि में तप कर वे निखरते गये। कहा भी है –

'तप्तं तप्तं पुनरपि काञ्चनं कान्तवर्णम्'

आज खरा एवं निखरा हुआ उनका जो जीवन दिखाई देता है – वह उनकी पिछली साधना का ही प्रतिफल है।

कई वर्षों से मुनिराजजी इस क्षेत्र में विचर रहे हैं, वे यहाँ की जनता में लोकप्रिय भी हैं। मैंने सोचा कि इस सन्त-पुरुष के बाह्य जीवन के साथ आन्तरिक जीवन की झांकी भी प्रस्तुत करूं। सन्त के अन्तर्मुखी जीवन का प्रकाशन करना साधारण खेल नहीं है – वह टेढ़ी खीर है, फिर भी भक्ति की शक्ति से मैं ऐसा करने का प्रयास कर रहा हूँ।

पुस्तक के 'उपनिषद्' खंड में उनके दार्शनिक जीवन की अंतर्मुखी झांकी प्रस्तुत की गई है।

इसमें कई ज्वलंत प्रश्नों के उत्तर मुनिराजजी ने शास्त्रसम्मत दिये हैं। जैन धर्म में जातिमद का खंडन किया गया है। गुरुदेव का कथन है, "जातिमद विनाश की जड़ है।" विश्व में काले-गोरे, हरिजन-सवर्ण आदि के विवादों की जड़ यह जातिमद ही है।

हरिजन मंदिर प्रवेश का मुनिराजजी ने समर्थन किया है। पवित्र भक्ति-भावना से कोई भी मंदिर में प्रवेश कर सकता है। वीतराग प्रभु की उपासना कोई भी कर सकता है—उसमें श्रद्धा चाहिये।

हरिजनों और सवर्णों के बीच जो मनमुटाव चल रहा है, वह स्वार्थी लोगों द्वारा उत्पन्न किया हुआ रोग है। इस संदर्भ में मुझे रामचरितमानस का वह पावन प्रसंग याद हो आता है जिसमें चित्रकूट में मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी निषादराज भील से मिलते हैं—

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि ते दंड प्रनामू॥
राम सखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा॥

(फिर प्रेम से पुलकित केवट (निषादराज) ने अपना नाम लेकर दूर से ही वशिष्ठजी को दण्डवत् प्रणाम किया। ऋषि वशिष्ठजी ने राम-सखा जानकर उसको जबर्दस्ती हृदय से लगा लिया मानो जमीन पर लोटते हुए प्रेम को समेट लिया हो।)

महाकवि तुलसीकृत रामचरितमानस के अयोध्याकांड के इस प्रसंग से पता चलता है कि भगवान् और भक्त की बीच में कोई भेदभाव नहीं रहता।

'उपनिषद् खंड' में चण्डाल मुनि हरिकेशबल के उत्तम जीवन का उल्लेख कर गुरुदेव ने इस बात की पुष्टि की है—मानव-मानव के बीच का भेद अज्ञान के कारण है।

आशा है 'बिखरे मोती' की और भी सीरीज प्रकाशित होंगी।

दानदाताओं की सूची

५०१) श्रीमान् चम्पालालजी जीवराजजी गेमावत, वाली

५०१) श्रीमान् हस्तीमलजी कवदी, गोलसायला

२००) एक सद्गृहस्थ की तरफ से –
हस्ते शा भीकमचन्दजी जसराजजी, खोड़

अनुक्रमणिका

१. समर्पण
२. दो शब्द

प्रथम खण्ड

३. आत्मकथा की कथा	१
४. आत्मकथा (मुनिराजजी के मुखारविंद से वर्णन)	२
५. एक चमत्कार (पाली चातुर्मास के अन्तर्गत)	१४
६. लावण्य पौषध-शाला का निर्माण (वाली-चातुर्मास सन् १९५८ के अन्तर्गत)	१६
७. उपसम्पदा की प्राप्ति	१९
८. कल्प-पुष्प सम देलवाड़ा मंदिर	२१
९. मुनिभूषण पदवी से अलंकृत (मद्रास में श्री संघ द्वारा)	२३
१०. कम्पिलपुर का मन्दिर	२६
११. वल्लभ विहार	२८
१२. वल्लभ विहार ज्ञान-भंडार	३०
१३. पाषाणों में फूल खिला (सांड़ेराव के प्राचीन मंदिर का जीर्णोद्धार सन् १९६६ के चातुर्मास में)	३२
१४. वसन्त-प्रभा या नूतन उपाश्रय भवन (सांड़ेराव उपाश्रय भवन का निर्माण)	३५
१५. मरुधररत्न अलंकरण	३७
१६. श्री मानदेव सूरि ज्ञान मंदिर	३९
१७. शिवमस्तु सर्वजगतः (सादड़ी में उपधान तप और विघ्न-निवारण)	४०
१८. मार्गदर्शक गुरु	४१
१९. वल्लभ कीर्ति-स्तम्भ	४२
२०. विश्व-वल्लभ (आचार्यदेव श्री वल्लभ सूरिजी का जीवन-परिचय)	४४
२१. प्रेम-सन्देश (श्री मुछाला महावीर राजकीय विद्यालय की स्थापना)	४९
२२. विविध कार्य-कलाप	५०

द्वितीय खण्ड

कथामणि-मंजूषा

२३. गुरुदेव के यात्रा-संस्मरण ५६
कथामणि १ : कथनी और करनी में अन्तर ५६
टिप्पणी – साधर्मी भाई की भक्ति : अवहेलना क्यों ६०
कथामणि २ : बिना झोली का फकीर ६२
कथामणि ३ : गिरिराज के दर्शन ६४
कथामणि ४ : काश ! आज भारत में कोई मनु होता ६५
कथामणि ५ : बंगाली डाक्टर या जासूस ६६
कथामणि ६ : मुसलमान भाई की भक्ति ६८
कथामणि ७ : वाह रे ! गांगुली बाबू ७०
कथामणि ८ : विष और अमृत ७२
कथामणि ९ : भाई, हम कालिया बोदिया नहीं हैं ७३
कथामणि १० : मन ही वृन्दावन ७५
कथामणि ११ : पीलिया की लपेट में ७७

तृतीय खण्ड

२४. कल्प-पुष्प ८१
कल्प-पुष्प १ : 'समभाव रूपी चमत्कार' ८१
कल्प-पुष्प २ : तू प्रभु भजन कर प्राणी ८२
कल्प-पुष्प ३ : भक्ति का प्रसाद ८३
कल्प-पुष्प ४ : गुरु वचन या आनन्द कोष ८३
कल्प-पुष्प ५ : दुर्घटना की भविष्यवाणी ८४
कल्प-पुष्प ६ : भक्त या क्या ? ८४
कल्प-पुष्प ७ : जाओ, पास हो जाओगी ८४
कल्प-पुष्प ८ : सत्यपथ के राही के साथ (मुनिराजजी के साथ लेखक की यात्रा का एक अविस्मरणीय प्रसंग) ८५
२५. सहज प्रकाश ८७

चतुर्थ खण्ड

२६. उपनिषद् ९१
प्रश्नोत्तर विषय :–
१. सङ्गीत ९१
२. ज्योतिष ९४
३. जातिमद विनाश की जड़ है ९६
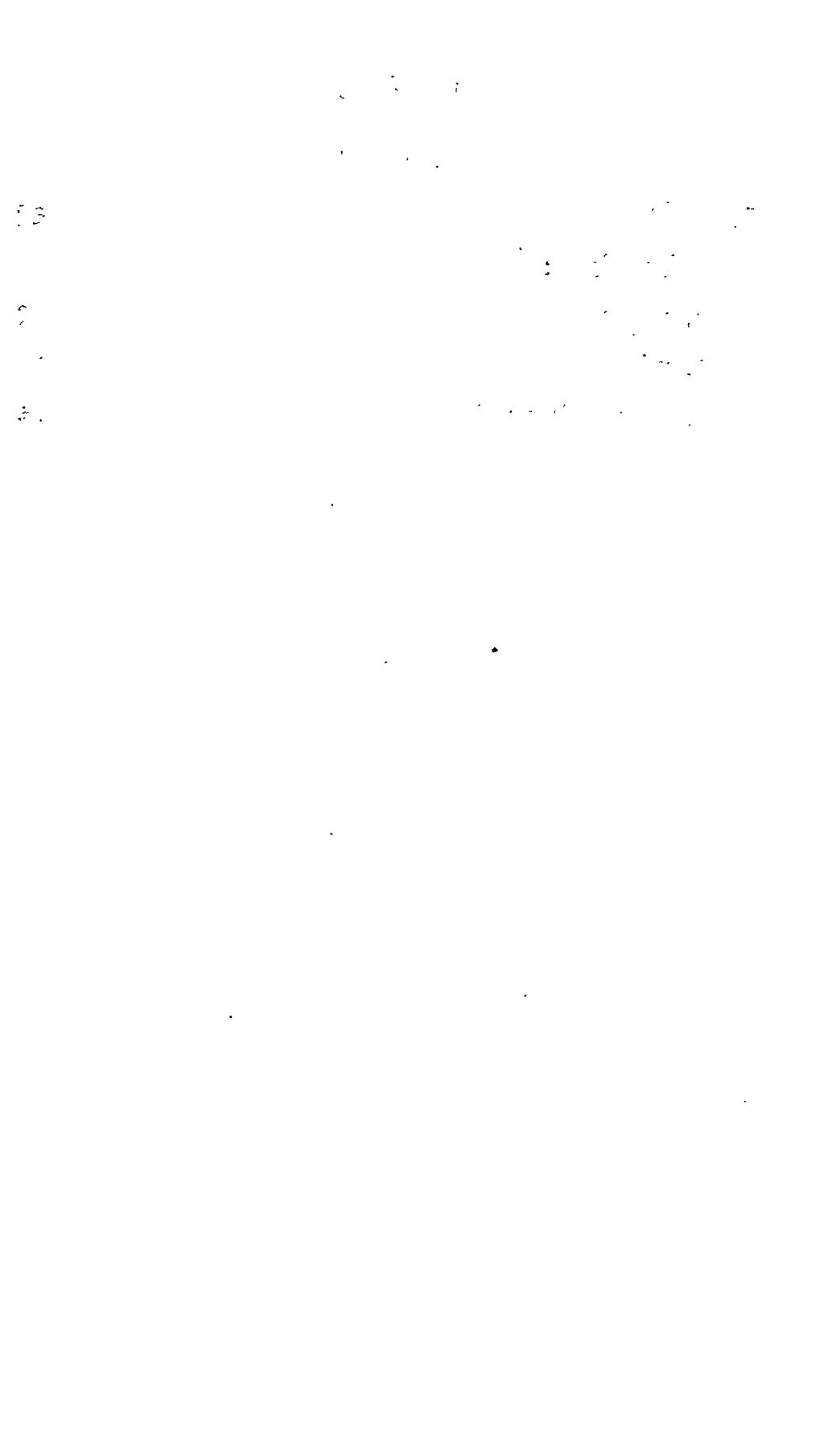
।। अहिंसा परमो धर्मः ।।

प्रथम खण्ड
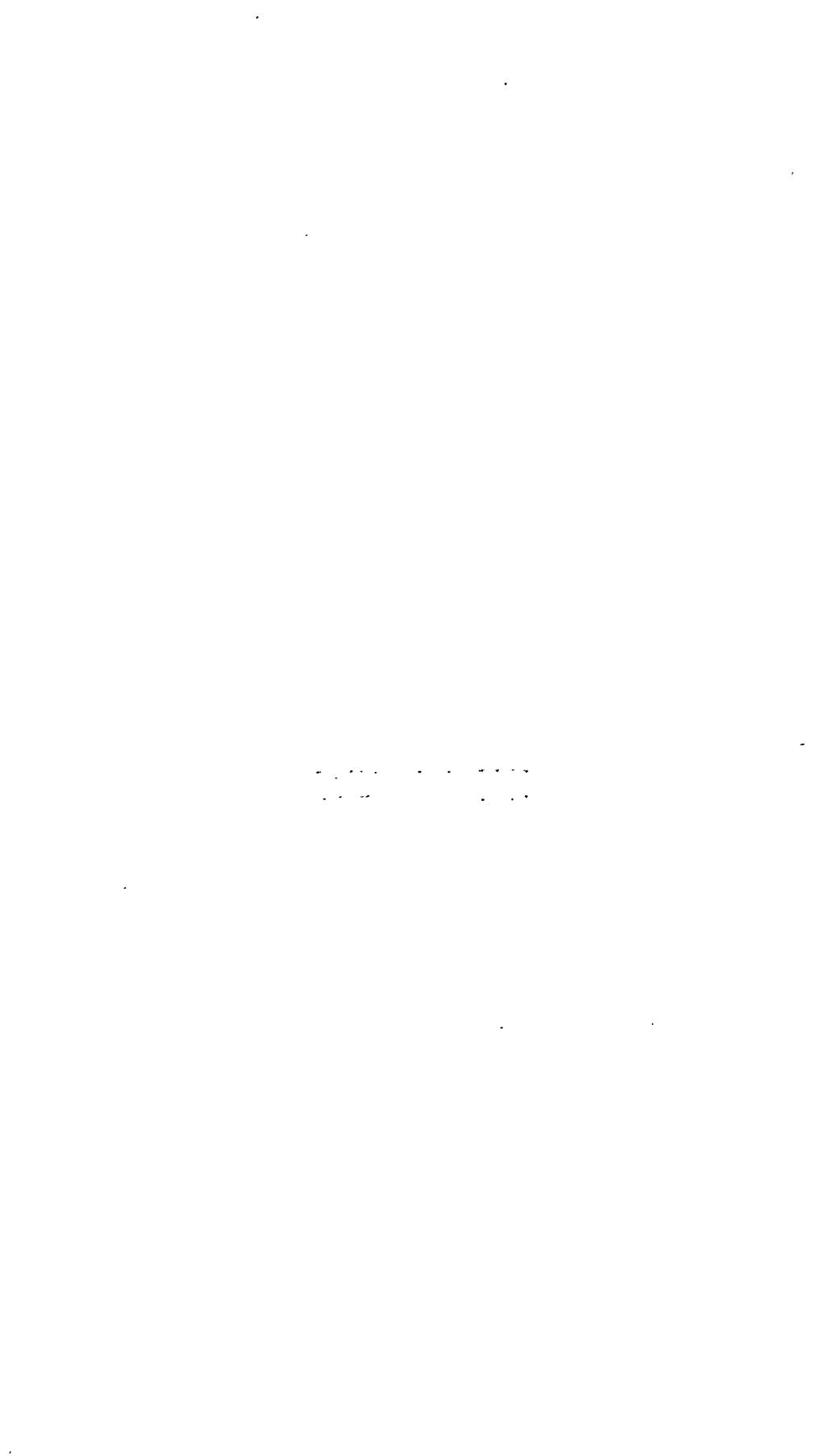
पूज्यपाद भारतदिवाकर श्राचार्यदेव

श्री विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(मन्दाक्रान्ता)

त्यागाऽऽसक्तो विषयविमुखो ब्रह्मचर्ये निमग्नः,
शान्तः क्षान्तः सुजनदयितो मोक्षमार्गे प्रवृत्तः ।
शिक्षादेष्टा जिनवचनगः क्षेत्रसप्तोपदेष्टा,
सूरिः श्रीमान् जगति जयताद् वल्लभोऽन्वर्थनामा ॥

—मुनि महिमा विजय

मुनिभूषण, मरुधररत्न

श्री वल्लभदत्त विजयजी महाराज साहेब

(उपगीतिः)

भवभयभीतं संयम,–सक्तं स्वाध्याये तत्परम् ।
विज्ञं प्रवचनकुशलं, सेवानिष्ठं कठिनमृदुलम् ।।१।।
जिनालयजीर्णोद्धार,–दत्तचित्तं साधुचरित्रम् ।
तं विवेकिजनवल्लभं, भक्त्या वन्दे मुनिभूषणम् ।।२।। (युग्मम्)

—मुनि महिमा विजय

आत्मकथा की कथा

मुनिभूषण श्री वल्लभदत्त विजयजी के सम्पर्क में मैं २५-३० वर्षों पहिले आया था तब से अब तक मैं मुनिश्री की यश सुगन्ध से आकर्षित हुआ हूँ। उनके व्यक्तित्व में मस्तमौलापन, निस्पृहता एवं शीलत्व का त्रिवेणी संगम हुआ है। अतः मुनिराजजी के प्रति मेरा आकर्षण स्वाभाविक था। भ्रमर पुष्प पर सुगन्ध से मोहित होकर मंडराता है– मैंने मुनिजी के गुण सुगन्ध से आकर्षित होकर उनसे प्रार्थना की–'मैं आपका जीवन-परिचय लिखना चाहता हूँ, कृपया कुछ बताइये'। मुनिश्री ने कहा, 'इस पचड़े में मत पड़ो, किसी महापुरुष का गुणगान करो।' मैंने अनेक बार निवेदन किया और उनके पास इस कार्य हेतु महीना भर चक्कर लगाता रहा–अन्त में मुनिजी ने मेरा पीछा छुड़ाने के लिए अपनी आत्मकथा अपने ही शब्दों में लिखवाई। इस आत्मकथा में मस्त शैली की झलक मिलती है।

इस आत्मकथा से मैं उत्साहित हुआ हूँ। मुनि-चरणों में यदि मैं अपना भाव-पुष्प, चाहे वह कैसा भी हो, चढ़ा पाऊंगा तो अपने आपको धन्य समझूंगा।

मुझे प्रेरणा मिली है 'भक्तामर-काव्य' से जिसमें इन पंक्तियों ने मुझे विशेष बल प्रदान किया है–

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतुः ॥ ६ ॥

मैं अल्पज्ञानी ज्ञानियों के प्रति हँसी का पात्र हूँ।
मैं आपकी इस भक्तिरूपी प्रेरणा का छात्र हूँ॥
आल्हाददायिनी मधु ऋतु में कोकिलाएं कूकती।
है हेतु केवल आम्र की ही बौर जिससे कूजती॥

–भक्तामर

अनुवादक : श्री के. एल. सेठी
के सौजन्य से

आत्मकथा

(मुनिराजजी के मुखारविंद से वर्णन)

अपने जीवन के वारे में मैं कितनी ही बातें भूल चुका हूँ । जो कुछ धुंधला-सा याद है वह लिखा देता हूँ । मेरा जन्म, भरतपुर रियासत की कामा तहसील के अन्तर्गत भट्टकी नामक ग्राम में एक खातेपीते जाट जमींदार श्री सालिगरामजी की धर्मपत्नी भूरी वाई की कुक्षि से हुआ था । जन्म संवत् मुझे याद नहीं– मेरा सांसारिक नाम वृन्दावन रखा गया । मैंने वचपन में अपनी माता के मुख से सुना था कि तेरा जन्म गोवर्धन पर्वत की उपासना से हुआ है । तेरे पिता ने श्री गोवर्धन पर्वत की आराधना कर तुझे पाया है । वे घटना को यों वताती थीं कि तेरे पिता को जब कोई सन्तान लाभ नहीं हुआ तो एक दिन उन्होंने गोवर्धन पर्वत के सम्मुख यह प्रतिज्ञा की– 'हे गिरिराज ! यदि मुझे पुत्र-प्राप्ति हो जाय तो दण्डवत् करते हुए तुम्हारी परिक्रमा करूँगा । उनकी मनःकामना पूर्ण हुई और तेरे पिता ने तेरे जन्म के बाद तीन दिन का उपवास करके दंडवत् परिक्रमा की थी ।

हमारा परिवार पक्का वैष्णव धर्म का अनुयायी था । घर में प्याज-लहसुन का उपयोग नहीं हुआ । मेरे दादा अंग्रेजी सेना में सूबेदार थे । दादी मेरी माता के सामने अक्सर कहा करती थी कि वे (दादाजी) सेना में रह कर मांस-भक्षण करना सीख गये । जब छुट्टी में घर आते तो आसपास के गांवों के गड़रियों के वकरे चुरा कर जंगल में ही मांस पका कर खा जाते थे । घर आने पर जब पत्नी को मालूम पड़ता तो वे चार दिन तक उन्हें घर में पैर नहीं रखने देतीं और लड़ाई-झगड़ा होता । लेकिन दादीजी अपने वैष्णव धर्म में बड़ी पक्की थीं । एक दिन वैष्णव संत स्वामी चरणदासजी से दादीजी ने दादाजी की शिकायत की और कहा कि उन्हें मांस-भक्षण के पाप से बचाइये । स्वामी चरणदासजी बड़े उग्र स्वभाव के तपस्वी थे । उनकी तपस्या के बारे में अनेक प्रकार की कथाएं प्रचलित थीं– जैसे कि एक टांग पर खड़े होकर सूर्य के सामने घंटों तक तप करना, सर्दी के दिनों में

तालाव में खड़े होकर जप करना। वे गांव में वचनसिद्ध के नाम से प्रसिद्ध थे। जव उन्होंने दादाजी की यह करतूत सुनी तव उन्होंने दादीजी से कहा– 'जा वेटी ! मैं सव ठीक कर दूंगा।' और उन्होंने दो दिन के वाद दादाजी को बुलाया और फटकार लगाते हुए कहा, 'अरे गणपतसिंह, तू वकरे का मांस खाकर क्यों जीव हत्या का पाप करता है ? यदि तूने अपनी धर्मपत्नी की वात नहीं मानी तो मैं कहता हूं कि एक दिन तुझे भी अपनी प्यारी संतानों से हाथ धोना पड़ेगा। तेरा कुल नष्ट हो जायेगा।' स्वामीजी की उग्र प्रकृति और कड़क भाषा को सुनकर दादा कांपने लगे। शरीर से पसीना छूटने लगा। उन्होंने हाथ जोड़ कर कहा, 'गुरुदेव ! आज से यह पाप नही होगा। कृपा करके आज मेरे गले में वैष्णव धर्म की कंठी वांध दीजिए।' दादाजी ने अपनी प्रतिज्ञा को अंत तक निभाया।

मेरे पिताजी सालिगरामजी वड़े भक्त और ईमानदार व्यक्ति थे। उनकी ईमानदारी की धाक सारे गांव वालों पर जमी हुई थी। वे गांव वालों से कहते थे कि यदि मेरे वाप का कर्जा किसी घर में निकलता हो तो मैं कौड़ी-कौड़ी चुकाने के लिए तैयार हूं। लोग उनकी वातों की वड़ी कदर करते थे और अपने हर मामलों में उनसे सलाह लेने आते थे। वे गांव में वहुत लोकप्रिय थे। वे गौरवर्ण और छः फुट ऊंचे थे। वे तुलसीकृत रामायण का नित्य पाठ करके भोजन करते थे। जव मेरी आयु पांच वर्ष की हुई उस समय मेरे पिताजी का देहान्त प्लेग की वीमारी से हो गया। दादाजी, ताऊजी और चाचाजी मेरे जन्म से पहले ही मर चुके थे। अव मेरा लालन-पालन मेरी मां तथा ताई ने करना शुरू कर दिया। जव मैं दस वर्ष का था तव मेरी माता का अचानक देहान्त हो गया। अव लालन-पालन का भार ताईजी पर आ पड़ा। चार वर्ष तक उन्होंने वड़े प्रेम से मेरा पोषण किया। चौदहवें वर्ष की आयु में मेरी ताईजी का भी देहान्त हो गया। ताईजी की मृत्यु से मुझे वड़ा दुःख हुआ। चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा नजर आ रहा था। उसी समय एक ऐसी घटना घटी जिससे मुझे सदा के लिए घर त्यागना पड़ा मां-वाप व ताई के मरने के वाद। वह घटना इस प्रकार है–

मैं अक्सर साधुओं की संगत करने लगा। घर में से जो चीज हाथ आती उसे मैं साधुओं को दे देता। घी, शक्कर, गुड़, अनाज,

पैसा-टका जो कुछ हाथ में आता वह सब महात्माओं की सेवा में पहुंचने लगा। इस साधु-भक्ति से मेरे निकट के कुटुम्वी मुझसे अप्रसन्न रहने लगे। वे आपस में वातें करते कि यह घर का सत्यानाश कर रहा है– एक दिन बाबा बन कर निकल भागेगा। इसकी जल्दी शादी करो क्योंकि सगाई तो माता के समय में ही एक अच्छे जमींदार की कन्या से हो चुकी थी। उन्होंने मेरे श्वसुर पक्ष को खवर दी कि लड़की की जल्दी शादी कर लो। वहां से खबर आई कि हम तैयार हैं। अव उन्होंने मुझे पूरा कस लिया। साधु-संतों के पास बैठना वंद, उनको दाना-पानी, पैसा-टका, अनाज-गुड़ देना सब बन्द हो गया। यदि मैं उनकी ओर जाने का उपक्रम करता तो दो थप्पड़ पड़ते। मेरे लाख मना करने पर भी एक दिन विवाह की तैयारी हो गई और शुभ मुहूर्त में विवाह सम्पन्न हो गया। इस विवाह ने मेरे मन को विद्रोही बना दिया। अनेक विचार मन में आने लगे कि यहां से कैसे भागें ? 'जहां चाह वहां राह।' एक दिन मौका देख कर मैं घर से भाग निकला। भुलाना स्टेशन हमारे गांव से सात कोस दूर था। मैं इसी ओर निकल पड़ा और रात की गाड़ी में विना टिकट बैठ गया। गाड़ी दिल्ली की ओर सरपट भाग रही थी और मेरा मन भी अनेक विचारों में भाग रहा था। उन दिनों दिल्ली में बड़ी खलबली मची थी। स्वामी श्रद्धानंदजी की हत्या एक मुसलमान ने की थी जिससे हिन्दुओं में बड़ा रोष और असंतोष था। शुद्धि और संगठन के प्रणेता स्वामी श्रद्धानन्दजी के जाने से आर्यसमाज हतप्रभ सा हो गया था। आर्यसमाज की ओर से अनेक सज्जन दिल्ली स्टेशन पर निगरानी रखने के लिए घूमते रहते जिससे कोई हिन्दू बालक या स्त्री यवनों के चक्कर में न पड़ जाय। मेरे दिल्ली के स्टेशन पर उतरते ही एक आर्य सज्जन से भेंट हो गई। उन्होंने मेरी तरफ बड़े गौर से देखा और पूछा–कहां से आये हो और कहां जाना है ? लगता है देहाती हो। घर से भाग कर आये मालूम पड़ते हो। किसी मुसलमान गुण्डे के हाथ पड़ गये तो मुसलमान वना देगा, गाय का मांस खिलाएगा और सुन्नत कर देगा।

मैंने जव ये वातें उन सज्जन से सुनीं तो शरीर में काटो तो खून नहीं। गौमांस और सुन्नत की वात सुनकर तो वहुत दुःखी हुआ। मैंने अपनी देहाती भाषा में उक्त सज्जन को अपने घर से भागने की

रामकहानी सुनाई तथा यह भी कहा कि यहां पर मेरा कोई अपना नहीं है। मैं घर भी वापिस नहीं जाना चाहता। अब मैं क्या करूं? उन सज्जन ने कहा – 'चल तू, तुझे अनाथालय में भर्ती करवा लेंगे। वहां पढ़ना लिखना। वहां तेरे जैसे और भी बहुत से लड़के हैं।' मेरा अन्दाज है कि उस समय मेरी आयु पन्द्रह वर्ष की होनी चाहिए। वे सज्जन मुझे एक अनाथालय के कर्मचारी के पास ले गए और भर्ती करा लिया। यह अनाथालय क्या था – साक्षात् नरक का दूसरा रूप। उस तथाकथित अनाथालय में २०-२५ देहाती असहाय छोटे-छोटे बच्चों को पकड़ कर अनाथ बनाया गया था। उन्हें करुणा उत्पन्न करने वाले गाने भी सिखा दिए गए थे। उनसे गलियों में सारे दिन भीख मंगवाई जाती थी। बच्चों की थोड़ी सी भूल पर भी उन्हें खूब पीटा जाता था। उन्हें रूखा-सूखा भोजन देकर कैदियों की तरह रखा जाता था। उनके पीले-पीले चेहरे, फटे-टूटे कपड़े यह कह रहे थे कि किसी राक्षस के पाले पड़े हैं। मैं भी उनमें से एक था। हम काफी लड़के इस कैद से भागने की सोचते रहते किन्तु चहारदीवारी इतनी ऊंची थी कि भागना असंभव था। फिर भी दस पांच दिन के बाद कोई न कोई लड़का रस्सी के सहारे चढ़कर भागने में सफल हो जाता और अनाथालय में खलबली मच जाती थी। उसे पकड़ने के लिए बड़ी दौड़धूप होती थी। कभी-कभी इस अनाथालय में एक नाटक और भी होता – वह यह कि दिल्ली नगरपालिका की ग्राण्ट लेने के लिए हम सब तथाकथित अनाथ बालकों को दिल्ली निवासी बनाया जाता, नाम बदल दिए जाते, जाति गोत्र सभी परिवर्तित हो जाते और इस चक्कर में मुझे भी ब्राह्मण बनाया गया। भले ही जन्म से ब्राह्मण कुल में नहीं जन्मा किन्तु इन अनाथालयों के महाप्रभुओं की कृपा से मैं ब्राह्मण बन गया। नाम भी बाल मुकुन्द रखा गया। दो तीन वर्ष के बाद हम तीन चार लड़के इस कैदखाने से भागने में सफल हुए। हम सीधे फिरोजपुर के एक आर्यसमाज के अनाथालय में पहुंच गए। यह अनाथालय दिल्ली के अनाथालय से बहुत अच्छा था। पढ़ने लिखने की व्यवस्था बड़ी अच्छी थी किन्तु यहां धर्म के बारे में बड़ी कट्टरता थी। यहां आर्यसमाज के मत के सिवाय अन्य मतों को भ्रान्त और मिथ्या समझा जाता था। मेरे संस्कार तो पक्के कृष्णभक्ति के थे। यहां पर प्याज का उपयोग दाल-साग में होता था। मैं संस्कार से

वैष्णव परिवार में पला था अतः मैं रूखी रोटी पानी के साथ खाया करता था। मैंने प्याज, लहसुन का सेवन नहीं किया। यह क्रम दो-तीन वर्ष चला। यदा कदा शिक्षकों और साथियों के साथ मेरी मूर्तिपूजा के बारे में झपट हो जाती थी। इस स्थान पर मैं दो तीन वर्ष रहा और एक दिन इस घुटन से भी छूट कर भाग निकला। मैं भटकता-भटकता आगरा आया। आगरे के बेलनगंज में इधर-उधर भटक रहा था कि अचानक मेरी नजर श्री लक्ष्मीचंदजी के बनाए हुए जैन मंदिर पर पड़ी। जीवन में पहली बार मैंने जैन मंदिर के दर्शन किए। दर्शन करके वापस लौट रहा था उसी समय श्री भूपतसिंहजी शर्मा, मैनेजर सरस्वती प्रेस की दृष्टि मेरे पर पड़ी। उन्होंने मुझे बड़े प्रेम से बुलाया और पूछा कि तुम कौन हो, कहां से आये हो और क्या चाहते हो ? मैंने कहा – कुछ अधिक नहीं चाहता हूँ, केवल नौकरी। खाना, पीना और थोड़ा सा हाथ खर्च – बस बहुत है। उन्होंने कहा कि प्रेस में रह जाओ। यह सब मिल जाएगा। मैं इस नौकरी से बहुत प्रसन्न हुआ मानो स्वर्ग का राज मिल गया हो। सुबह जल्दी उठना, जमुनाजी में स्नान, सौ-पचास दंड-बैठक और हाथ से अपना भोजन पकाना – यह मेरा नित्य का कार्यक्रम रहता। फालतू समय में सरस्वती ज्ञान मंदिर से पुस्तकें लाकर पढ़ता। उन पुस्तकों में मुझे पूज्य गुरुदेव आत्मारामजी महाराज साहब कृत तत्त्वादर्श, अज्ञानतिमिर भास्कर और चिकागो प्रश्नोत्तर भी पढ़ने को मिले जिससे मेरी पूर्व धारणाएँ हिल उठीं और जैन धर्म के प्रति विश्वास जमा। आज मेरे हृदय में जैन धर्म के प्रति जो विश्वास है वह उन्हीं पुस्तकों का प्रतिफल है।

एक दिन प्रेस से पट्टावली समुच्चय नामक पुस्तक का प्रूफ दिखाने के लिए मुझे प्रेस मैनेजर साहब ने रोशन मोहल्ले में स्थित जैन उपाश्रय में भेजा। वहां प्रसिद्ध विद्वान् मुनिराज श्री त्रिपुटीजी महाराज विराजमान थे। वे ही उस ग्रन्थ का सम्पादन कर रहे थे। सबसे पहिले मैंने इन जैन साधुओं के ही दर्शन किए जिससे मुझे अत्यन्त ही प्रसन्नता का अनुभव हुआ। मैं प्रतिदिन प्रूफ दिखाने के लिए उनके पास आने जाने लगा। पूज्य न्यायविजयजी महाराज साहब की प्रसन्न मुद्रा मुझे बहुत ही आकर्षित कर गई। श्री हेतु मुनिजी महाराज की निस्पृहता देखते ही बनती थी। वे बड़े मस्त तबियत के थे। वे सारा दिन मजदूरों में,

किसानों में जा कर जैन धर्म, अहिंसा, शाकाहार, शुद्ध आचरण आदि का प्रचार करते। बीमार कुत्ते, गधे, बैलों को नवकार मंत्र सुनाते। उन्हें न खाने की परवाह थी न पीने की। सुबह चले और शाम को आये। रास्ते में किसी से चना-चवेना मिल गया तो फांक लेते। वे मस्तमौला-फक्कड़ तबियत के साधु थे। भोले इतने कि बच्चों के साथ बच्चों जैसी बातें करते। मेरी उनसे खूब पटती। आज भी उनकी सरलता और भोलापन मेरी आंखों में रमण करता है। हां तो पूज्य न्यायविजयजी महाराज मुझे अक्सर कहते – 'संसार में क्या पड़ा है? साधु बनो। अध्ययन करो। हमारे साथ, हमारे जैसे बन कर रहो।' मेरे ऊपर इन बातों का असर पड़ा और मैं प्रेस की नौकरी छोड़ कर उन्हीं के साथ रहने लगा और श्रावक की क्रिया और सूत्रों को याद करने लगा। चार पांच महीनों में ही मैंने दो प्रतिक्रमण, जीव विचार, नव तत्त्व आदि सीख लिए। अब आगरे से त्रिपुटीजी का विहार दिल्ली की ओर हुआ। वहां से वे चैत की ओली कर अक्षयतृतीया पर हस्तिनापुर पधारे। वहां बिनौली निवासी बाबू कीर्ति प्रसादजी वकील उनकी सेवा में उपस्थित हुए और निवेदन किया कि दिगम्बर सम्प्रदाय की दशा अग्रवाल जाति बीसा अग्रवालों के अहंकार से तंग आ गई है और वह आर्यसमाजी बन जाना चाहती है। आप वहां आइयेगा और उन्हें श्वेताम्बर धर्म में दीक्षित कीजिएगा। त्रिपुटीजी का विहार हस्तिनापुरजी से सरधना की तरफ हुआ। वहां इस कार्य में उन्हें सफलता मिली। लगभग एक हजार व्यक्ति श्वेताम्बर मूर्ति-पूजक सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। वहां त्रिपुटीजी महाराज और दिगम्बर सम्प्रदाय के पंडित एवं आर्यसमाजों के विद्वानों के साथ जो धार्मिक चर्चाएँ होतीं, उन्हें सुनने का मुझे मौका मिला जिससे मेरा ज्ञानवर्धन भी खूब हुआ। ऐसी चर्चाएँ फिर बाद में मुझे सुनने को नहीं मिलीं। उनका चातुर्मास दिल्ली में हुआ। अब मेरी पढ़ाई का सिलसिला जारी रहा। 'हेम लघु प्रक्रिया' नामक व्याकरण मुझे पूज्य मुनिराज श्री दर्शन विजयजी महाराज साहब पढ़ाने लगे। दिल्ली चातुर्मास के पश्चात् त्रिपुटीजी महाराज का विहार गुजरात की ओर हुआ और मैं तीर्थयात्रा के लिए पूर्व देश की ओर चला गया। मुनि सम्मेलन में त्रिपुटीजी को पहुँचना था। उसके बाद, मैं उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। मेरी लघु दीक्षा हठी सिंह की बाड़ी में–पूज्य पन्यास श्री न्यायविजयजी महाराज

के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुई। यह महीना ज्येष्ठ का था। बड़ी दीक्षा चौमासे के बाद पालीताणा में फाल्गुण मास में पूज्य आचार्य विजय भक्तिसूरिजी के कर-कमलों द्वारा हुई। मेरे दीक्षागुरुजी पूज्यपाद ज्ञान विजयजी महाराज थे। उन्होंने दो चातुर्मास गुजरात में बिताये। उसके पश्चात् वे फिर दिल्ली की तरफ विहार करते हुए पालनपुर से अजारी (सिरोही जिला) पधारे। उस समय अजारी के पास जंगल में जैन सरस्वती के मंदिर के निकट मार्कण्डेश्वर शिव मंदिर में प्रसिद्ध योगिराज श्री शान्तिसूरिजी महाराज विराजमान थे। अजारी के सरस्वती मंदिर के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती है कि वहां पूज्य जैनाचार्य श्री हेमचन्द्राचार्यजी ने साधना की थी। वहां पर त्रिपुटीजी महाराज लगभग एक महीना ठहरे। एक दिन हम सब योगिराज के दर्शन करने के लिए सरस्वती मंदिर की ओर जा रहे थे कि मैं लघुशंका हेतु झाड़ियों में बैठा। उठते ही चार कदम आगे चला हूँगा कि एक खजूर का तीक्ष्ण कांटा जो लगभग आधे इंच का होगा, मेरे पैर में टूट गया। अब मेरा यह हाल हुआ कि तीव्र वेदना के कारण एक कदम भी आगे चलना कठिन हो गया। मैंने गुरुजी से कहा कि मेरे पैर में काँटा चुभ गया है, चलना मुश्किल है। गुरुजी ने मेरी बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया। उन्होंने समझा कि मैं झूठ बोल कर उन्हें बना रहा हूँ। दूसरे दिन विहार कर हम पिंडवाडा आए। मेरा पाँव सूज कर हाथी पाँव जैसा हो गया था। पीड़ा का यह हाल था कि रात-दिन मुझे नींद नहीं आती थी – ऐसी हालत में भी मैंने गुरुजी के साथ चलना निरन्तर जारी रखा। वे सादड़ी आए जहाँ पर विद्वान् वक्ता मुनिराज श्री विद्याविजयजी महाराज तथा आचार्य देव विजय लब्धि-सूरिजी के दर्शन किए। अब मेरे पैर की हालत बहुत खराब थी। काँटे ने अपना काम शुरू कर दिया था – उससे जहर फैल गया। पाँव से पीप निकल रही थी। एक दिन एक पंजाबी वैद्य, जो वरकाणा छात्रावास में रहता था, मुझे देखने के लिए आया। उसने सहज में मेरे पैर को दबाया तो कांटे पर जोर पड़ने से वह बाहर निकल आया। काँटा आधे इंच का होगा – उसे देखकर सब साधुगण हैरान हो गए और कहने लगे कि तुमने चालीस दिन इस काँटे की भयंकर पीड़ा को सहन कर रेकार्ड तोड़ दिया है। अब हमारा विहार सादड़ी से अजमेर की ओर हुआ लेकिन मेरे पैर में काँटे ने जहर फैला दिया था इसलिए

चलना संभव नहीं था। मैं एक दो गांव गुरुजी के साथ चला फिर मैंने हाथ जोड़ कर उनसे न चलने के लिए क्षमा मांगी। वे मुझे जवाली में अकेला छोड़कर आगे चल दिए क्योंकि उन्हें अजमेर जाने की जल्दी थी और मैं अपने भाग्य को कोसता हुआ जवाली में ही रह गया। अकेला रहना मुझे अच्छा नहीं लगा। कोई मुनिराज मिल जाय तो ठीक पड़े, यह सोचकर दो चार दिन विश्राम करने के बाद मैंने पाली की तरफ विहार किया। वहां मुनि ज्ञानसुन्दरजी महाराज विराजमान थे। उनसे पूछताछ की तो उन्होंने राय दी कि गुरुजी के पास ही जाना ठीक है। अब गर्मी अधिक हो गई है अतः पाली ही ठहर जाओ। चातुर्मास के बाद चले जाना। उनकी बात मुझे पसंद आई और यह चौमासा पाली में ही हुआ। उस साल पाली में स्थानकवासी मुनियों का चौमासा भी था। उनको आगमों का अध्ययन कराने के लिए प्रसिद्ध पंडित बेचरदासजी आए हुए थे। एक दिन पंडितजी मुझे रास्ते में मिल गए। मैंने पंडित साहब से पूछा कि क्या आप मुझे पढ़ाओगे? उन्होंने कहा—क्यों नहीं, एक घंटा तो पढ़ा ही दूंगा। मैं उनके पास प्राकृत भाषा का व्याकरण पढ़ने लगा। मेरी गति प्राकृत भाषा में अच्छी होने लगी। सूत्रों का सीधा अर्थ मेरी समझ में आने लगा। चौमासे के बाद मैं सीधा गुरुजी की सेवा में अजमेर पहुँचा। वहाँ से हम सब जयपुर होते हुए दिल्ली पहुँचे। दिल्ली से मेरठ में वे धर्म प्रचार करने जा रहे थे कि मेरे हाथ से एक दो घड़े टूट गए। गुरुजी महाराज बड़े कुपित हुए और कहने लगे कि तू चलता फिरता अपशकुन है। तू हमारे साथ रहेगा तो हमारा काम नहीं होगा। हम यहाँ हजारों की संख्या में जैन बनाने आए हैं और एक तू है कि हरदम प्रमाद करता रहता है—एक महीने में दो-दो घड़े फोड़ डाले, तू मारवाड़ चला जा। मैंने कहा—'गुरुदेव, घड़ा तो क्या चीज है—आदमी की देह भी फूट जाती है। सब चीजें परिवर्तनशील हैं। मैंने जान बूझ कर तो घड़े फोड़े नहीं हैं। फिर भी भविष्य में प्रमाद नहीं होगा। अब की बार क्षमा करें।' गुरुजी इस उत्तर से और भी कुपित हुए और कहने लगे कि बड़ा ज्ञानी बना है। अब तू हमारे साथ एक मिनट भी नहीं रह सकता, हम नये जैन बनाने आए हैं—अपशकुन करने नहीं।

अब गुरुजी के साथ रहना असंभव था। मैं अपने भाग्य को कोसता हुआ और गुरुदेवों को नमस्कार करके मारवाड़ की तरफ

चल निकला। जेठ की बेहद गर्मी, लू और अंधड़ आदि से मैं बुरी तरह परेशान हो गया था। हापुड़ मंडी में आकर चौमासा करने की मन में ठान ली। यह चौमासा हापुड़ में हुआ, मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। वहाँ रहकर मैंने वररुचि का प्राकृत प्रकाश और उत्तराध्ययन सूत्र का स्वाध्याय स्वयं ही किया। चौमासे के बाद मेरा विहार मारवाड़ की ओर हुआ। मैंने श्री पार्श्वनाथ फलौदी तीर्थ की यात्रा की। वहां एक नई समस्या का सामना करना पड़ा। ताराचन्द नामक एक असामाजिक तत्त्व ने मन्दिर में बड़ी धांधली मचा रखी थी। उसने मुनीम को पटा कर मंदिर में ही गांजा, भंग और चरस का अड्डा बना रखा था। वह मंदिर का रुपया लेकर जोधपुर जाता और अपने संगी-साथियों के साथ गुलछर्रे उड़ाता। उसने झूठमूठ ही मुनीमजी से यह कह दिया था, 'मेरी छोटी बहन की शादी तुम्हारे साथ कर दूंगा'। मुनीमजी विधुर थे। मुनीमजी उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आगये। अब क्या था– वह साला-बहनोई का कल्पित रिश्ता स्थापित कर मनमानी करने लगा। यह व्यक्ति बड़ा बातूनी और चालाक था। वह भोले-भाले लोगों को फंसा कर रुपये ऐंठता। बाद में मालूम पड़ा कि उसने कितनी ही चोरियाँ भी की थीं। वह अपना नाम बदल लेता–फकीरचन्द, प्रेमचन्द, ताराचन्द और अनेक नाम धारण कर रुपया ऐंठता था। यों मन्दिर के कितने ही कर्मचारी इस बदमाश की करतूतों को जानते थे परन्तु म्याऊं का मुंह पकड़े कौन? मुझे एक पुजारी ने ताराचन्द की सब बातें कहीं और यह भी अर्ज किया कि लातों के देव बातों से नहीं मानते। अतः कोई कड़ा कदम उठाया जाय तो अच्छा रहेगा। मैंने तुरन्त ताराचन्द को बुलाया और उसे फटकारा और चेतावनी देते हुए कहा कि एक महीने में चले जाना नहीं तो अपनी खैर न समझना। तूने समझ क्या रखा है–यह जैन मन्दिर है, जुआरियों का अड्डा नहीं है – अपना भला चाहते हो तो यहां से भाग जाओ। ताराचन्द भी कम नहीं था–नामधारी था। उसने उत्तर दिया कि आपके जैसे छप्पन देखे हैं। मुझे कौन निकाल सकता है, निकालने वाले को नागौरी गहना (जेल) पहना दूंगा।

इस तू-तू, मैं-मैं को कितने ही लोगों ने सुना किन्तु सबने ताराचंद का ही पक्ष लिया। उनमें से कितनों ने कहा कि साधु को इतना गुस्सा

नहीं रखना चाहिए। यह साधु थोड़ा ही है—साधु वेशधारी है। साधु ने कड़ी भाषा का प्रयोग क्यों किया? समाज का अधिकांश भाग गहराई में नहीं जाता—वह ऊपरी टीमटाम को ही महत्त्व देता है। और कुछ भय के कारण भी मुख नहीं खोलते।

इसमें मैंने मौन रहना श्रेयस्कर नहीं समझा और सिंह-गर्जना करते हुए कहा—"ताराचन्द तुम एक महीने के भीतर मन्दिर छोड़ देना। मैं आज से तीसवें दिन यहाँ आऊँगा।" ताराचन्द ने कहा—"आइये, देख लूंगा।"

मैंने फलौदी से विहार किया और कुचेरा की तरफ चला गया। कुचेरा में एक उपासरा था जहाँ भूतों का निवास बताया जाता था। मैंने उसी उपासरे में डेरा डाला। मैं उस उपासरे में २८ दिन रहा किन्तु मैंने एक दिन भी भूत के दर्शन नहीं किए। लोगों ने समझा कि यह कोई मस्तमौला साधु है, भूत इसके वश में हो गए हैं। मैं ठीक ३०वें दिन फलौदी पहुँचा। वहां जाकर मालूम किया कि ताराचन्द गया नहीं। पुजारी ने डरते-डरते कहा-'महात्माजी, इससे झगड़ा मत करना। बड़ा फिसादी आदमी है।' मैंने पूछा—'भाई! वह है कहाँ?' "है तो मन्दिर में ही, अभी तो मेड़ता सिटी गया है। वहाँ आचार्य विजय न्यायसूरिजी पधारे हुए हैं। वह दो तीन दिन से वहाँ जाता है—सुना है उनका शिष्य बनने वाला है। आचार्यजी उसकी वक्तृत्व कला पर रीझ गये हैं—वह अभी आनेवाला है। आप उसे कुछ मत कहना। वह आपको बहुत कष्ट पहुंचा सकता है। उसके संगी-साथी यहाँ जमे हुए हैं, वह पूरा बदमाश है।" मैं पुजारी की बात अनसुनी करके मन्दिर के दर्शन करने चला गया। वहाँ मुझे कुछ देर लगी। मैं वापिस आकर क्या देखता हूँ कि ताराचन्द गांजे की चिलम भरकर अपने साथियों के साथ मन्दिर के चौतरे पर दम लगा रहा है। मैंने उसे देखते ही कहा, 'तू मंदिर की आशातना करता है। यहाँ से तुरन्त चला जा, नहीं तो अच्छा नहीं होगा।' ताराचन्द ने मुझे देखा और उसकी आंखों में खून बरसने लगा। वह अपने स्थान से उठकर मेरे ऊपर हमला करने के लिए जोर से दौड़ा। न मालूम उस समय मेरे में कहाँ से इतना जोर आ गया कि ताराचन्द को एक झटके में उठा कर दूर फेंक दिया— जैसे हाथी कमलनाल को तोड़कर बड़ी सरलता से दूर

फेंक देता है। ताराचन्द पड़ा-पड़ा अपने संगी-साथियों को ललकारने लगा– 'पकड़ो, मारो, घेर लो, जाने न पावे– क्या देखते हो ?' उसके दस बारह आदमियों ने मुझे घेर लिया। वे जोर-जोर से चीख रहे थे पर पास आने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी। सबके मन में यह भय था कि ताराचन्द को जो प्रसादी मिली है वह हमें न मिल जाय। मैंने अपना सब सामान उठाया और स्टेशन की ओर चल पड़ा। मेरे पीछे लोगों की एक बड़ी भीड़ आ रही थी और जोर-जोर से 'पकड़ो'-'पकड़ो' की आवाजें लगा रही थी। उस समय स्टेशन मास्टर जोधपुर निवासी भंडारीजी थे– मैंने उन्हें अपनी सारी राम-कहानी कही और उन्हें यह भी कहा कि आप भीड़ को समझा कर वापिस लौटा दीजिये। भंडारीजी सुनकर कहने लगे कि यह आपने अच्छा नहीं किया। यह काम मुनिराज का नहीं है। मुनिराज तो शांति के सागर होते हैं। मैं इस समय अपने इस कृत्य का औचित्य सिद्ध करने में अपना समय नहीं खोना चाहता था। उन्हें धर्म लाभ देकर आगे बढ़ा। स्टेशन के बगल में दो तीन मील के फासले पर एक गांव नजर आया। मैं उस तरफ निकल पड़ा। भीड़ कुछ दूर आकर लौट गई और अपने राम गाँव में पहुँच गए। वहाँ हनुमानजी के मंदिर में डेरा लगाया। वहाँ से विहार कर मैं जोधपुर आया तब मालूम पड़ा कि ताराचन्द नामक व्यक्ति ने आचार्य विजय न्यायसूरिजी महाराज को शिष्य बनने का प्रलोभन देकर खूब ठगा। आचार्यश्री ने नागौर के श्री संघ पर दबाव डालकर इसे वहाँ से हटाया। बाद में इस व्यक्ति ने मझेरा के विद्यालय की रसीदों में गड़बड़ की तथा चोरी भी की तथा आऊआ के मंदिर में भी इसने चोरी की। वहाँ के कार्य-कर्त्ताओं ने इसे पकड़वा कर ढाई वर्ष की सजा करवाई।

ऐसे असामाजिक व अनैतिक व्यक्ति समाज के शरीर में क्षय के कीटाणुओं की तरह लग जाते हैं। उनसे समाज को बचाना नितान्त आवश्यक हो जाता है। ऐसे व्यक्तियों का विरोध करना मनुष्य मात्र का पुनीत कर्त्तव्य हो जाता है। जोधपुर से ओसिया तीर्थ के दर्शन करके मैं पाली आया। यहीं पर मुझे पूज्यपाद मुनि श्री लावण्य विजयजी महाराज के दर्शन हुए। उनकी सेवा में मैं लगभग छः वर्ष रहा। उन्होंने मुझे विद्या का प्रसाद खिला कर आदमी बनाया–उनका

एक चमत्कार

(पाली चातुर्मास के अन्तर्गत)

मैं मुनि सुन्दर सूरीश्वर महाराज विरचित अध्यात्म कल्पद्रुम का अध्ययन कर रहा था कि मेरी दृष्टि निम्नांकित सुधा तुल्य पंक्तियों पर पड़ी–

न च राजभयं न च चौरभयं,
न च वृत्तिभयं न वियोगभयम् ।
इहलोकसुखं परलोकसुखं,
श्रमणत्वमिदं रमणीयतरम् ।।[1]

हिन्दी रूपान्तर – साधु जीवन में न तो राज्य का भय है, न चोर का भय है, न वृत्ति (आजीविका) का भय है और न वियोग का भय है, इस भव में भी सुख है और परभव में भी सुख है– अतएव साधुभाव रमणीय है ।

मैं इस अमृत घूंटी को पीकर पुलकायमान हो गया । मैं सोचने लगा कि मुनिराजों का जीवन कितना मस्त एवं उत्तम होता है । सुगुरु पूज्य मुनिराज वल्लभदत्त विजयजी का व्यक्तित्व मेरे नेत्रों के सामने झूमने लगा । उनके जीवन का लक्ष्य है– कमल पत्र पर जैसे जल विन्दु नहीं ठहरती, साधु किसी स्थान विशेष से मोह नहीं रखते । परन्तु जहाँ साधु जाते हैं वहाँ कुछ न कुछ जनहितकारी कार्य करवा ही देते हैं । मुनिराज श्री वल्लभदत्त विजयजी के दो चातुर्मास पाली मारवाड़ में हुए । वहाँ पर आपने देखा कि उपाश्रय अत्यन्त ही पुराना है । न हवा का प्रबन्ध है न रोशनी का । तब से आपके मन में यह धुन सवार हुई कि समाज में जहाँ तहाँ सुउपाश्रयों, सभा भवनों एवं जीर्ण-शीर्ण मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया जाय । पाली में द्वितीय चातुर्मास के अन्तर्गत पाली उपाश्रय भवन के निर्माण के लिए आप

---

१. अध्यात्म कल्पद्रुम : यतिशिक्षा–त्रयोदश अधिकार–३८ श्लोक की टीक से उद्धृत – टीकाकार मुनिश्री धनविजयजी गणि ।

जब उपदेश कर रहे थे तब एक चमत्कार हुआ। उस समय पाली के लब्ध-प्रतिष्ठित श्रेष्ठिवर्य कानमलजी सिंघी के शरीर में उनके स्वर्गस्थ पिता (पितृदेव-पूर्वज) प्रविष्ट हुए। पूर्वज ने कानमलजी की धर्म-पत्नी को कहा कि इसे (कानमलजी को) कह देना कि उपाश्रय का शीघ्र निर्माण करा दे। सेठ कानमलजी सिंघी ने उपाश्रय का पुनः निर्माण कराया। अच्छे कार्य में कुछ विघ्न भी आते हैं किन्तु पूज्य मुनिराज ने सबका समाधान करके उन्हें संतुष्ट किया। समाज में ऐसे भवनों की नितान्त आवश्यकता है– इनके बिना न तो धार्मिक कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न होते हैं न सभादि का भी सुप्रबन्ध हो सकता है।

जिसको हम चमत्कार कहते हैं– साधुजनों के लिए वह साधारण सी बात है। मुनिराजों का सुमन्तव्य ऐसे ही प्रभावोत्पादक रूप से प्रकट होता है।

महाकवि भवभूति ने 'उत्तररामचरित' नाटक में सिद्ध-सन्तों के मन्तव्य और वचन-सिद्धि के सम्बन्ध में यह उल्लेख किया है–

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ॥

प्रथम अंक–राम-वचन।

"लौकिक सज्जनों की वाणी अर्थ का अनुसरण करती है, परन्तु प्रधान ऋषियों की वाणी का अर्थ अनुसरण करता है।

———

जब उपदेश कर रहे थे तब एक चमत्कार हुआ। उस समय पाली के लब्ध-प्रतिष्ठित श्रेष्ठिवर्य कानमलजी सिंघी के शरीर में उनके स्वर्गस्थ पिता (पितृदेव-पूर्वज) प्रविष्ट हुए। पूर्वज ने कानमलजी की धर्म-पत्नी को कहा कि इसे (कानमलजी को) कह देना कि उपाश्रय का शीघ्र निर्माण करा दे। सेठ कानमलजी सिंघी ने उपाश्रय का पुनः निर्माण कराया। अच्छे कार्य में कुछ विघ्न भी आते हैं किन्तु पूज्य मुनिराज ने सबका समाधान करके उन्हें संतुष्ट किया। समाज में ऐसे भवनों की नितान्त आवश्यकता है– इनके बिना न तो धार्मिक कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न होते हैं न सभादि का भी सुप्रबन्ध हो सकता है।

जिसको हम चमत्कार कहते हैं– साधुजनों के लिए वह साधारण सी बात है। मुनिराजों का सुमन्तव्य ऐसे ही प्रभावोत्पादक रूप से प्रकट होता है।

महाकवि भवभूति ने 'उत्तररामचरित' नाटक में सिद्ध-सन्तों के मन्तव्य और वचन-सिद्धि के सम्बन्ध में यह उल्लेख किया है–

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति॥

प्रथम अंक–राम-वचन।

"लौकिक सज्जनों की वाणी अर्थ का अनुसरण करती है, परन्तु प्रधान ऋषियों की वाणी का अर्थ अनुसरण करता है।

लावण्य पौषध-शाला का निर्माण

(वाली-चातुर्मास सन् १९५८ के अन्तर्गत)

पूज्यपाद मुनि श्री लावण्य विजयजी महाराज साहव पूज्यपाद आचार्यदेव विजयकमल सूरीश्वरजी महाराज साहव पंजावो के विद्वान् शिष्य थे। आप श्री ने पूज्य गुरुदेव विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज साहव के पास चार वर्ष रहकर प्रारम्भिक विद्याध्ययन किया। इसके वाद आप श्री ने आगम का विशेष अध्ययन पूज्य आचार्य श्री आनन्दसागर सूरिजी महाराज साहव से किया। आपकी जन्मभूमि चाणोद थी। आप वहुत तपस्वी, विद्वान्, निस्पृह एवं स्पष्ट वक्ता थे। आपके जीवन के संवंध में लिखते हुए मुझे ये पंक्तियां स्मरण हो आती हैं –

"Never shall yearnings torture him, nor sins
Stain him, nor ache of earthly joys and woes
Invade his safe eternal peace;"[1]

—The Light of Asia

"न उसे आशा-तृष्णा सताती थी और न पाप उसे छू पाता था और न भौतिक सुख की अभिलाषाएँ उसके आत्मिक अमर आनन्द में वाधा डालती थीं।"

ऐसा था आपका निर्मल साधु जीवन। वाली श्री संघ पर आपका वड़ा उपकार है। ये महात्मा मुनिराज श्री वल्लभदत्त विजयजी महाराज साहव के विद्यागुरु थे। ऐसे साधुभूषण की स्मृति में मुनिराजजी के सदुपदेश से वाली श्री संघ ने लावण्य पौषध-शाला का निर्माण करवाया है।

पूज्य मुनिराजजी ने सन् १९५८ में वाली नगर में चातुर्मास किया। वाली नगर फालना स्टेशन से ५ मील दूरी पर स्थित है। यहां पर नगरपालिका है। इस नगर में वालकों एवं वालिकाओं के पृथक्-पृथक् उच्च विद्यालय हैं। नगर निवासी जागरूक हैं। जव पूज्य

---

1 The Light of Asia : Poet-SIR EDWIN ARNOLD, Page 145, 2nd Stanza

मुनिराज श्री वल्लभदत्त विजयजी ने यहां चातुर्मास किया तब यहां का उपाश्रय भवन अत्यन्त ही छोटा था। यह उपाश्रय एक छोटे गाँव के योग्य भी नहीं था। इस उपाश्रय में दादाजी की छत्री थी। इस भवन में नगर के योग्य न तो सभा की व्यवस्था हो सकती थी और न साधु-संतों के विश्राम के लिये यह उपयुक्त स्थान था। पर्वाधिराज पर्युषण के दिनों में यहां पर स्थानाभाव अत्यन्त ही अखरता था। नगर के श्रद्धालु भक्त व्याख्यानादि के लिए जब किसी प्रकार इसमे बैठ जाते तो गर्मी के कारण उन्हें भीषण कष्ट होता था। मुनिराजजी ने संघ के हितार्थ नव उपाश्रय भवन निर्मित करवाने के लिए उपदेश दिया।

इस उपाश्रय के निर्माण के लिए गुरुदेव को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस कार्य हेतु कितनी ही टीका-टिप्पणियां होने लगीं। कुछ लोग कहते कि पुराना उपाश्रय बड़ा मजबूत है— इसे तोड़ कर व्यर्थ रुपया क्यों बरबाद किया जाय ? गुरुदेव तो जानते ही थे कि समाज एवं जन-हितकारी कार्यों में विघ्न तो आते ही हैं। पूज्य महाराजजी ने दृढ़ संकल्प कर लिया था कि वाली नगर में एक विशाल और आधुनिक ढंग के सभा भवन को बनवाना ही है। जब अपने पावन कार्य में उन्हें बाधा दिखाई दी तब आपने पुराना उपाश्रय छोड़ दिया और आप श्री पोरवालों के उपाश्रय में पधार गए। इस घटना से नगर के श्रद्धालु भक्तों को दुःख हुआ। उन्होंने मध्याह्न तक रु० ४०,००० एकत्रित किए और गुरुदेव के पास आकर विनती की – "हे गुरुदेव ! आपके आशीर्वाद से हमने इतना चंदा तो लिखवा दिया है और शेष धनराशि भी शीघ्र लिखवा देंगे। आप पुनः पुराने उपाश्रय में पधारो।" गुरुदेव के मन में किसी के प्रति न तो द्वेषभाव है न राग। अपना संकल्प पूरा होने पर समभाव से पुनः पुराने उपाश्रय में पधार गए। जनता के हर्ष का पारावार न रहा। वाली के भक्तों ने ७०,००० रु० लगभग की लागत से सुन्दर उपाश्रय भवन बनवाया जिसका नाम मुनिराजजी ने अपने विद्यागुरु पूज्य मुनि श्री लावण्य विजयजी की स्मृति में लावण्य पौषध-शाला रखा। इस उपाश्रय में पूज्य दादाजी की जो चरणपादुकाएं थीं, उनको मंदिरजी में विधिवत् प्रतिष्ठित कर दी है।

इस कार्य से बाली का ओसवाल श्री संघ महाराजजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता रहता है। श्री महाराजजी कहते हैं कि इसके लिए तो बाली के श्री संघ को ही धन्यावाद देना चाहिए। मेरा इसमें क्या है ?

मुनिराजजी के निश्छल व्यक्तित्व एवं सेवाभाव को देख कर संत तिरुवल्लुर की निम्नांकित पंक्तियों का स्मरण हो आता है—

जिसने दुःख मिटा दिया, उसका स्नेह स्वभाव।
सात जन्म तक भी स्मरण, करते महानुभाव॥
भला नहीं है भूलना, जो भी हो उपकार।
अच्छा है झट भूलना, कोई भी अपकार॥[1]

—तिरुक्कुरल

---

[1] तिरुक्कुरल : गार्हस्थ्य धर्म प्रकरण
सन्त तिरुवल्लुर विरचित—मूल तमिल भाषा में
हिन्दी रूपान्तर।

उपसम्पदा की प्राप्ति

साधु महात्माओं के चरण जहाँ अंकित होते हैं – वहाँ नया जीवन लहराने लगता है। पाली चातुर्मास के पश्चात् मुनिराजजी दिव्य तीर्थ सम्मेद शिखरजी की ओर पधारे वहाँ से लौटते हुए आपने प्रथम चातुर्मास भागलपुर में किया तथा दूसरा फिरोजावाद में। वहाँ पर आपने धर्मोपदेश से जनता का उद्‌बोधन किया। वहाँ से आप श्री हस्तिनापुर की यात्रा करते हुए गोड़वाड़ की ओर पधारे।

सिरोही, वामनवाड़जी की यात्रा करते हुए गुरुवर राणकपुर लौटे। वहाँ से होते हुए देलवाड़ा (मेवाड़) गए। देलवाड़ा नाथद्वारा-उदयपुर मार्ग पर स्थित है। भगवान् एकलिंगजी के मंदिर से तीन मील दूरी पर यह स्थान है। इसमें भगवान् ऋषभदेवजी का भव्य मंदिर है। इस मंदिर की कला आबू के जैन मंदिरों के सदृश है। जब प्रभात में मुनिराजजी मंदिर में दर्शनार्थ गए तब मलमूत्र की दुर्गन्ध आई। आप श्री ने पुजारी से पूछा, यह दुर्गन्ध कैसी है? मंदिर में इतनी अपवित्रता! तो पुजारी ने कहा कि पहाड़ और जंगल से लंगूर आकर रात्रि में मूर्ति पर तथा मंदिर के प्रांगण में मलमूत्र त्यागते हैं, हम कहाँ तक साफ करें। साफ करने पर भी गन्दगी रह जाती है–क्या करें? जब तक मंदिरजी में जाली नहीं लग जाती तब तक यह आशातना रहेगी ही। महाराज श्री ने उस अपवित्रता को देखकर यह प्रतिज्ञा की कि यह कार्य शीघ्रातिशीघ्र किया जाय। वहाँ से केसरियाजी के दर्शन करके आप श्री पालीताणा पधारे और सिद्धाचलजी की नवाणु यात्रा की। वहाँ से विहार करते हुए आप श्री प्रभासपट्टन, पोर बन्दर, गिरनारजी, शंखेसरजी, भीलड़ियाजी आदि तीर्थ-स्थलों की यात्रा करते हुए मरुभूमि में पधारे। आप श्री ने चातुर्मास सादड़ी में किया। उसके बाद पूज्यपाद गुरु महाराज श्री समुद्र सूरीश्वरजी महाराज साहब की सेवा में दो-तीन महीने रहे और

वरकाणाजी की प्रतिष्ठा के शुभ अवसर पर आपने उनसे वासक्षेप पूर्वक उपसम्पदा प्राप्त की। तत्पश्चात् मुनिराजजी का चातुर्मास वाली में हुआ पर देलवाड़ा मंदिर के लिए की हुई प्रतिज्ञा उन्हें वार-वार याद आती थी।

[उपसम्पदा के सम्बन्ध में उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २६ में यह उल्लेख है :-

'उद्यमवता च ज्ञानादिनिमित्तं गच्छान्तरसङ्क्रमोऽपि विधेयः, तत्र चोपसम्पद् गृहीतव्या' वादिवेतालशान्तिसूरिकृत टीका से उद्धृत।

अर्थात् - और उद्यमवान विशेष ज्ञानादि प्राप्ति के लिए गच्छ को छोड़कर दूसरे गच्छ को जाये और वहाँ उपसम्पदा ग्रहण करें। साधु की दस सामाचारी (साधु का सम्यग् आचार) होती हैं। उसमें दसमी सामाचारी उपसम्पदा है। गच्छ से कुल, गण, आचार्यादि भी समझना चाहिये।]

कल्प-पुष्प सम देलवाड़ा मंदिर

मुनिगण एक स्थान पर नहीं ठहरते। वे सांसारिक मोह माया से दूर रहते हैं। उनका सारा जीवन दीप तुल्य होता है — जलकर ज्योति विकीर्ण करना ही उनका ध्येय रहता है। ऐसे साधु सन्तों में हैं — मुनि वल्लभ दत्त विजयजी जो सदा निस्पृह सेवा में लीन हैं। उनके जीवन की झांकी देखकर मुझे यह पीयूष-वाणी स्मरण हो आती है —

वोच्छिंद सिणेहमप्पणो, कुमुयं सारइयं व पाणियं।
से सव्वसिणेहवज्जिए, समयं गोयम। मा पमायए॥[1]
— महावीर वाणी

अर्थात् — जैसे कमल शरत्काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता–अलग अलिप्त रहता है उसी प्रकार तू भी संसार से अपनी समस्त आसक्तियां दूर कर सब प्रकार के स्नेह बन्धनों से रहित हो जा। हे गौतम! क्षण मात्र भी प्रमाद न कर।

मुनि का जीवन पथिक के समान है। आज यहाँ तो कल अन्यत्र। सन् १९५९ में मुनिराजजी का चातुर्मास बम्बई में निश्चित हुआ।

आप श्री बम्बई पधारे तो सही पर मन में देलवाड़ा मंदिर की आशातना व्याकुल कर रही थी। संकल्प का उन्हें पूरा ध्यान था। शिल्पकला का अद्वितीय नमूना देलवाड़ा का आदिनाथजी का मंदिर आपके नेत्रों के सामने झूमता। आबू के मंदिरों की नक्काशी के समान यह मंदिर मुनिराजजी को विशेष आकर्षक लगा था। जिन शब्दों में मुनिराजजी ने इस कला का वर्णन मुझे किया — हृदय वीणा पर एक-एक शब्द मधुर गीत की तरह थिरकने लगा। उसी समय मैं आत्म-विभोर होकर ये पंक्तियां गुनगुनाने लगा —

इन्द्र भवन या कल्प विटप, सुषमा के हो पुष्पहार।
कला मंजूषा में अहा, शोभित शची के उपहार॥

---

१. महावीर वाणी : अप्रमाद सूत्र, श्लोक संख्या २२
संकलनकर्ता — श्री बेचरदास दोशी

उर्वशी इन शिलाओं पर, थिरक रही अमर मुस्कान ।
छलका हावों का वसन्त, हिला अधर पर सरस गान ॥[२]

मुनिराजजी ने संकल्प किया कि इन मंदिर की आशातना दूर करवाना है। इसी संकल्प को लेकर आप श्री बम्बई पधारे। पर्युषण पर्व के बाद वहाँ स्थित उदयपुर के सुश्रावक जोधराजजी कोठारी के सहयोग से मारवाड़ के पूर्व परिचित सज्जनों से मंदिर के लिये चन्दा करवा कर लगभग ७०००) रु० की रकम उदयपुर श्री गोकुल चन्दजी को भिजवाई। उन्होंने इस रकम से तीनों मंदिरों के चौगान में लोहे की जालियां लगवाईं—इनसे मंदिरों की गंदगी मिट गई। आनन्दजी कल्याणजी पेढ़ी ने मंदिर के जीर्णोद्धार के लिये हजारों रुपये खर्च किये हैं।

इस तरह मुनिराज का संकल्प पूर्ण हुआ। आज भी देलवाड़े का यह कलात्मक मंदिर उनके हृदय में बसा हुआ है। गुरुजी ने इसे कल्प-पुष्प की उपमा दी है। कोरनी की दृष्टि से यह ऐसा ही है।

---

२. ये पंक्तियां लेखक की 'राणकपुर मंदिर' शीर्षक कविता से उद्धृत की गई हैं।

मुनिभूषण पदवी से अलंकृत

(मद्रास में श्री संघ द्वारा)

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम् ।। ५ ।। *

—भक्तामर

श्रद्धा-भक्ति उस व्यक्ति के प्रति होना स्वाभाविक है जिसमें चरित्र की उज्ज्वलता हो । चरित्रवान् मनुष्य न केवल अपना उद्धार करता है वरन् अन्य लोगों को भी सत्पथ पर चलने की प्रेरणा देता है । मुनिराजजी के चारित्रिक गुणों का उल्लेख मैं भक्तिवश ही कर रहा हूँ । सुना है अमृत देवलोक में है परन्तु मेरे मत में सज्जन मनुष्य धरती के अमृत-घट हैं । वे मृतों को अमृत पिलाते हैं ।

मुनिराज श्री वल्लभदत्त विजयजी ने सन् १९६० में मद्रास में चातुर्मास किया । चातुर्मास में श्राविका आश्रम पालीताणा के चन्दे के लिए कार्यकर्त्तागण मद्रास आये । श्री मुनिराज ने मद्रास नगर के श्रावकों को इस शिक्षण संस्था में दान देने ने लिए उपदेश दिया । राजस्थानी श्रावक कहने लगे कि गुजराती बन्धु राजस्थानी संस्थाओं को दान देते नहीं हैं तो हम गुजरात की संस्थाओं को दान क्यों दें ? तब गुरुदेव ने श्रावकों को समझाया कि चाहे कहीं की संस्था हो—सब

---

* "गुणगान करने को जगेश्वर ! भक्ति वश उद्यत हुआ ।
यद्यपि अहो यह जानता हूँ, मंद बुद्धि बना हुआ ।।
मृग जानता सब भांति यह, है सिंह से बलहीन वह ।
हो किन्तु मोहाधीन शिशु के युद्ध क्या करता न वह ।।"
भक्तामर-काव्य : रचयिता पूज्य मानतुंगाचार्य ।
हिन्दी पद्यानुवाद — श्री के. एल. सेठी के सौजन्य से

अपनी हैं। वहां पढ़ने वाली बहिनें अपनी ही हैं। इस तरह उपदेश कर श्राविका आश्रम पालीताणा के कार्यकर्त्ताओं को करीब रु० ५०,००० की रकम दिलवा दी।

इसके बाद राजगृह के नूतन मंदिर के चन्दे हेतु श्री राजेन्द्रसिंहजी सिंघी मद्रास आये। मुनिराजजी ने उपदेश दिया तब वहां के श्रावकों ने कहा कि हम भूकम्प के समय रु० १०,००० दे चुके हैं अतः अब नहीं देंगे, किन्तु आप श्री के सदुपदेश से प्रेरित हो कर मद्रास के भक्तों ने रु० ३०,००० की रकम नूतन मंदिर हेतु भेंट की। यह था मुनिजी का प्रभाव।

मद्रास में रहने वाले जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक श्रावकों का कोई विद्यालय नहीं होने से उन्हें अपने बच्चों को विद्यालयों में प्रवेश कराने के लिए बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। बड़ी मुश्किल से स्कूलों में स्थान मिलता था। अतः वहां के नवयुवकों ने आप श्री से प्रार्थना की कि यहां हमें यह कष्ट है। यहां बड़े-बड़े मुनिराज पधारे, सब अपना-अपना कार्य कर गये किन्तु हमारे इस कष्ट की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। मुनिराजजी तो ज्ञान की ज्योति सर्वत्र जलाना चाहते ही हैं—बिना ज्ञान-दीप के जीवन-पथ कैसे आलोकित हो सकता है? समाज का पिछड़ापन ज्ञान के अभाव के कारण है अतः आप श्री ने अपने ओजपूर्ण उपदेश से मद्रास श्री संघ को इस कार्य के लिए प्रेरित किया।

फलस्वरूप लगभग साढ़े चार लाख रुपये स्कूल के लिये एकत्रित हो गये। यह है आप श्री के शिक्षा-प्रेम का ज्वलंत उदाहरण। एकलिंगजी के पास नागदा (नागह्रद) गांव में पुराना श्री शान्तिनाथजी का मंदिर है। यह मंदिर पहाड़ के नीचे विद्यमान है, इसकी चार दीवारें जीर्ण हो चुकी थीं। इसे जीर्ण अवस्था में देखकर मुनिजी को दुःख हुआ। मद्रास चातुर्मास की समाप्ति के कुछ पूर्व जीर्णोद्धार-रसिक श्री गोकुलचन्दजी का पत्र इस मंदिर के जीर्णोद्धार के लिए आया, तब आप श्री ने नये मंदिर से रु० ६,००० भिजवाए। इस रकम से जीर्ण दीवारें हटाकर नई मजबूत बनाई गईं। यदि यह

जीर्णोद्धार न होता तो वर्षा ऋतु में पहाड़ के पानी से मंदिर धीरे-धीरे नष्ट हो जाता। मद्रास से आप श्री ने देलवाड़ा (मेवाड़) मंदिरों की जाली के कार्य में और आवश्यकता होने से रु० १,००० व सुनाम (पंजाब) के मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिए रु० ३,००० भिजवाए।

मुनिराजजी की यश-सुगन्ध समाज में फैल गई थी। आपकी निस्पृह सेवा-भावना एवं निःस्वार्थपूर्ण कार्यों से प्रभावित होकर मद्रास के श्री संघ ने कार्तिक शुक्ला १४ को आपको मुनिभूषण की उपाधि से अलंकृत किया। यह अलंकरण करके संघ ने अपना ही सम्मान बढ़ाया है। ऐसे महात्माओं का गुण-गान भक्ति का अमृत-घूंट है।

कम्पिलपुर का मन्दिर

समाज का सुन्दर निर्माण तभी संभव है जब कि एकता का बोलवाला हो। मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव, कालों और गोरों की खाई, हिन्दू और मुसलमानों के संघर्ष जब तक नहीं मिट पाते तब तक 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का नारा थोथा ही बना रहेगा। पूज्य मुनिराजजी विश्वसमाज की मैत्री पर जोर देते हैं। विश्वमैत्री की आधारशिला है – प्रेम-भावना। समाज में अशान्ति का कारण है भेद-दृष्टि। साधु-मुनिराज तो विश्व को मैत्री भावना से देखते हैं तो फिर जैन समाज को बिखरे हुए देख कर उन्हें क्या दुःख न होगा? गच्छ-भेद, सम्प्रदाय-भेद, धर्म-भेद आदि से जैन समाज विशृंखलित हो रहा है। इसका अनुभव आप श्री को स्थान-स्थान पर हुआ और आपने समाज को एकता के सूत्र में बांधने का उपदेश दिया। पावापुरी के चातुर्मास के बाद विहार कर आप कम्पिलपुर तीर्थ पधारे। वहां पर आप रात भर ठहरे। वहां भयंकर दुर्गन्ध आने लगी। आपने पुजारी से इसका कारण पूछा तब उसने कहा कि मन्दिर की दीवार के पास ही गड्ढे खुदे हुए हैं जहां पर सारे गांव की विष्ठा डाली जाती है। ग्राम पंचायत की ओर से वहाँ पर कम्पोस्ट खाद तैयार की जाती है। विष्ठा के कारण मंदिर के आसपास तथा दूर-दूर दुर्गन्ध फैलती है। यदि इस जमीन को खरीद ली जाय तो यह दुर्गन्ध मिट सकती है। मुनिराज ने सोचा कि मंदिर तो पवित्र स्थान है जहां पहुँचने पर मन का मैल दूर होता है। यह गन्दगी शीघ्र ही हटा देनी चाहिए। कम्पिलपुर से आप फिरोजाबाद पधारे तथा वहां एक मास ठहरे। वहां एक व्यक्ति को उपदेश देकर जमीन खरीदने के लिये तैयार किया किन्तु वहां से प्रस्थान करने के बाद पीछे दूसरे साधु आए और उन्होंने उसे कहा कि उक्त मंदिर को खरतर गच्छ वाले सम्हालते हैं, तुम इस पचड़े में मत पड़ो। उन्होंने उल्टी पट्टी पढ़ाकर उस व्यक्ति को भड़का दिया। मुनिराजजी को इससे बड़ा दुःख हुआ। उनके मन में तो यह भेदभाव है ही नहीं। आपने हस्तिनापुर के प्रथम चातुर्मास के बाद दिल्ली आकर मंदिर के प्रबंधक को उपदेश देकर वह जमीन खरीदवाई तथा

इसके जीर्णोद्धार के लिये उपदेश देकर वाली उपधान तप समिति से रु० ५०००) तथा श्री जी० वी० संघवी से रु० ५०००) मंजूर करवाये। ऐसे कितने ही कार्य मुनिराजजी ने करवाए हैं। ऐसे साधु-सन्तों की नितान्त आवश्यकता है जो समाज को सत्पथ पर ले जायें। ऐसे महात्माओं का गुणगान मंगलकारी है। संत तुलसी ने कहा है—

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमरित नामु तुम्हार॥
रामचरितमानस : अयोध्याकाण्ड।

वल्लभ विहार

गुरु महिमा के संबंध में शास्त्रों में दिव्य वर्णन मिलता है। संत तुलसी ने गुरु को भगवान् का ही रूप माना है –

'वन्दों गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नररूप हरि।'

महाकवि सूरदास की इस पंक्ति पर मेरी नजर अटकी –

'वल्लभ नख चन्द छटा बिन सब जग मांहि अन्धेरो।'

अंधकार में प्रकाश फैलाने वाले दीप तुल्य गुरु का स्मरण सब दुःखों को दूर करने वाला होता है। मुनिराजजी ने आचार्यदेव वल्लभ सूरिजी के गुणों से प्रभावित होकर अपना नाम वल्लभदत्त विजय रखा। 'छत्तीस गुणों गुरु मज्झ' (छत्तीस गुणों वाले मेरे गुरु) की महिमा से मंडित पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री वल्लभ सूरिजी की स्मृति में मुनिराजजी कुछ न कुछ करवाते रहते हैं। श्री पार्श्वनाथ उम्मेद विद्यालय, फालना के प्रांगण में वल्लभ विहार का निर्माण आप श्री की सत्प्रेरणा से हुआ है। फालना पर कोई अच्छा उपाश्रय नहीं था। यहां से विचरने वाले सभी सम्प्रदाय के जैन साधु साध्वियों को कष्ट होता था। मंदिरजी की धर्मशाला में छोटा सा विश्राम-स्थल है किन्तु वह असुविधाजनक है। यदि १०–१५ साधु साध्वी आजायँ तो ठहरने की विकट समस्या हो जाती थी। इन सबको ध्यान में रखकर आप श्री ने खुड़ाला निवासी श्रीमान् जसराजजी धनरूपजी से इस संबंध में बात की व उनके सहयोग से यह उपाश्रय बना जिसका नाम पंजाब केसरी पूज्यपाद आचार्य श्री वल्लभ सूरीश्वरजी की स्मृति में वल्लभ विहार रखा गया। इसका उद्घाटन खुड़ाला निवासी श्री हिम्मतमलजी जसराजजी के द्वारा हुआ। इसमें जैन धर्म के सभी सम्प्रदाय के साधु साध्वी ठहर सकते हैं।

उद्घाटन के होने पर भी इसका निर्माण-कार्य सर्वथा समाप्त न हुआ था। कार्य समाप्ति के पूर्व ही श्री जसराजजी का हृदय-रोग से स्वर्गवास हो गया अतः शेष कार्य उनके सुपुत्र श्रीमान् मूलचन्दजी ने

सम्हाला व पूर्ण कराया। यह उपाश्रय एक लाख व पांच हजार की लागत से बना है। इसमें भिन्न-भिन्न गांवों के सद्गृहस्थों ने आर्थिक सहयोग दिया है। दानदाताओं के शुभ नाम शिला-पट पर अंकित हैं। इसका हिसाब प्रकाशित हो गया है।

शाश्वत जिन मंदिर—पार्श्वनाथ उम्मेद जैन छात्रावास भवन के ऊपर हाल में धातु की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। फिर भी कितने ही लोगों की इच्छा थी कि यहां एक स्वतन्त्र मंदिर बनाया जाए। श्री पार्श्वनाथ उम्मेद जैन शिक्षण संघ फालना की वार्षिक बैठक में कई बार की बात रखी गई किन्तु लोगों की मनःकामना पूर्ण न हुई। मुनिराजजी भी शिक्षण संघ की वार्षिक बैठक के समय फालना में विराजमान थे अतः यह बैठक आप श्री की अध्यक्षता में दिनांक १८-४-६८ को हुई। मंदिरजी की बात रखी गई कि वल्लभ विहार के ऊपर हाल बनाकर उसमें चतुर्मुख मंदिर बनाया जावे। सभा ने यह मंजूर किया तब चार सज्जनों ने इसको बनाने व प्रतिष्ठा सम्पन्न करवाने की जिम्मेदारी ली। ये सज्जन हैं—श्रीमान् मुकनचन्दजी अनोपचन्दजी खुड़ाला, श्रीमान् सरदारमलजी कोठारी सेवाड़ी, श्रीमान् हीराचंदजी पोमावा और श्रीमान् पुखराजजी शिवगंज। मंदिरजी का कार्यारम्भ हो गया है। यह कार्य लगभग एक लाख रुपये की लागत का होगा। वल्लभ विहार उपाश्रय की भूमि श्री पार्श्वनाथ उम्मेद जैन शिक्षण संघ, फालना ने विद्यालय के प्रांगण में दी है—इसके लिए साधुवाद, शिक्षण संघ का सहयोग प्रशंसनीय है।

वल्लभ विहार ज्ञान-भण्डार

वल्लभ विहार भवन में ज्ञान-भण्डार स्थापित करने की मुनिराजजी की उत्कट अभिलाषा है। उनकी इच्छा है कि यहाँ पर धीरे-धीरे ऐसा ज्ञान-भण्डार बनाया जाय जिसमें आकर मेधावी विद्यार्थी शोध-कार्य (Research) कर सकें। उनकी यह भी योजना है कि धीरे-धीरे अध्ययनशील विद्यार्थियों को भोजन और आवास की सुविधाएँ निःशुल्क प्रदान की जायँगी। मुनिराजजी का लक्ष्य सुन्दर है और इस दिशा में उन्होंने कार्य का शुभारम्भ भी कर लिया है। आचार्यदेव वल्लभसूरिजी विद्या के प्रचार व प्रसार पर बहुत जोर देते थे। उनका दृष्टिकोण था कि समाज का पिछड़ापन, रूढ़िवादिता एवं मोहान्ध विद्या के फैलाव से ही दूर होगा। पूज्य आचार्यजी के चरणसेवी मुनिराज वल्लभदत्त विजयजी भी शिक्षा पर विशेष बल देते हैं। वल्लभ विहार ज्ञान-भण्डार इसका ज्वलन्त प्रमाण है। इस भण्डार में षड्दर्शन, जैन, बौद्ध, वैदिक आदि धर्मों की पुस्तकों का संग्रह होगा। इसके अतिरिक्त विश्व के विद्वानों के सुग्रन्थ भी इसमें रखे जाएँगे। इस ग्रन्थालय को शासनसम्राट् पूज्यपाद आचार्य श्री विजयनेमीसूरीश्वरजी के शिष्यरत्न पूज्य आचार्य श्री विजयनन्दन-सूरिजी महाराज ने अपने स्वर्गीय शिष्य पन्यास श्री शिवानन्द विजयजी का चिरकोष अर्पण किया है जिसमें आगम साहित्य, दर्शनादि विषयों के मूल्यवान् ग्रन्थ हैं। पन्यास श्री रमणीक विजयजी महाराज ने भी पुस्तकें भेंट की हैं तथा आचार्य श्री विकासचन्द्र सूरिजी ने भी अपना ग्रन्थ-संग्रह अर्पण किया है तथा मुनिराजजी ने भी इसको अपना ग्रन्थ-संग्रह अर्पण किया है। यह योजना बड़ी सुन्दर है। साधु-मुनिराजों का ध्यान इस ओर नहीं है—यह अत्यन्त ही आवश्यक कार्य है। समाज के कितने ही विद्वान् ग्रन्थों तथा आर्थिक सहायता के अभाव में शोध-कार्य करने ही नहीं पाते। मुनिराजजी की इस योजना से समाज के

शिक्षित नवयुवकों को प्रोत्साहन मिलेगा। विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं ज्ञान-भण्डारों के विना समाज का रथ आगे कैसे बढ़ सकेगा? मुनिराजजी का लक्ष्य है–ज्ञान ज्योति चिर-प्रज्वलित रहे। इसके लिए आप सतत प्रयत्नशील हैं।

इस ग्रन्थ-भण्डार को श्री चन्द्रप्रभ स्वामी नया मंदिर ट्रस्ट मद्रास के ज्ञान खाते से रु० २,५००) की भेंट पुस्तकों के लिये प्राप्त हुई है। इसके लिए धन्यवाद।

पाषाणों में फूल खिला

(सांडेराव के प्राचीन मंदिर का जीर्णोद्धार सन् १९६६ के चातुर्मास में)

मुनिराजजी भारत की प्राचीन संस्कृति के अनन्य पुजारी हैं। वे जव कोई सुन्दर प्राचीन मंदिर या प्रतिमा के दर्शन करते हैं तव उनकी ऐतिहासिक सूक्ष्म दृष्टि स्थापत्यकला पर जाती है। जीर्ण मंदिरों एवं प्रतिमाओं को शोभायमान वनाने की उत्कंठा उनमें जागृत हो जाती है। वे उनकी प्राचीनता को कायम रख कर निर्माण-कार्य करवाने का सदुपदेश देते हैं। इन भव्य प्राचीन मंदिरों में हमारी पुरानी एवं गौरवशालिनी संस्कृति सोई हुई है।

सांडेराव मंदिर का जीर्णोद्धार गुरुदेव ने इतनी कुशलता से करवाया है कि प्राचीनता का एक अंश भी नष्ट नहीं होने पाया है और मंदिर अव इस प्रकार दिखाई दे रहा है मानों पारिजात पुष्प ही खिला हो। निर्माण की विशेषता यह रही है कि किसी भी मूर्ति का उत्थापन नहीं किया गया है तथा मूर्ति, तोरण, परिकर जहाँ खंडित थे वहाँ विलेपन किया गया। इस मंदिर को देख कर महाकवि कालिदास के ये अमर शब्द स्मरण हो आते हैं –

कल्पद्रुमाणामिव पारिजातः–रघुवंश, षष्ट सर्ग।

कल्पवृक्षों में जैसे पारिजात सर्वाधिक सुन्दर होता है वैसे ही यह मंदिर मुझे अमर पुष्प की तरह आँखों को अपनी ओर आकर्षित करता है।

मुनिराजजी ने सादड़ी का चातुर्मास पूर्ण होते ही मार्गशीर्ष मास में श्री शेषमलजी जसराजजी मेहता की पुत्री के विवाह के उपलक्ष्य में अष्टाह्निका महोत्सव पर सांडेराव पधारे, तव आपने श्री शान्तिनाथजी भगवान् के मंदिर की शोचनीय हालत देखी। इसमें चिमगादड़ों ने अपने घर वना लिये थे, गन्दगी के कारण दुर्गन्ध फैलती थी। कौए दीपक ले जाते थे। यह मंदिर प्राचीन एवं कलात्मक है। इस मंदिर की यह दशा देख कर मुनिराजजी ने संकल्प किया कि चाहे कोई चातुर्मास के लिये विनती करे या न करे किन्तु यहाँ चातुर्मास अवश्य

श्री शान्तिनाथजी भगवान का मन्दिर
सांड़ेराव
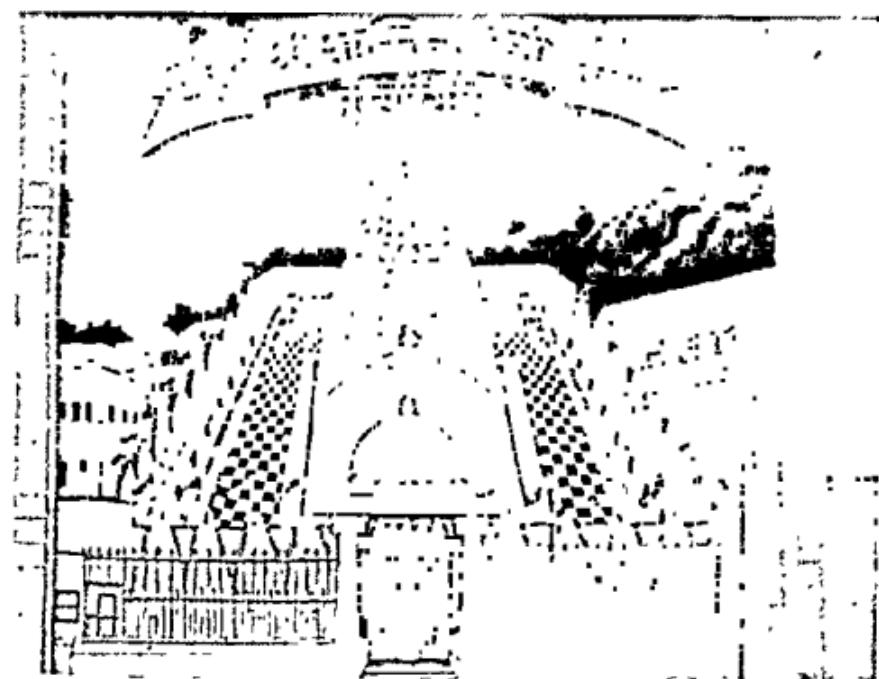
जीर्णोद्धार पूज्य मुनिराज श्री वल्लभदत्त विजयजी महाराज के सदुपदेश से सम्पन्न हुआ।

कीर्तिस्तम्भ
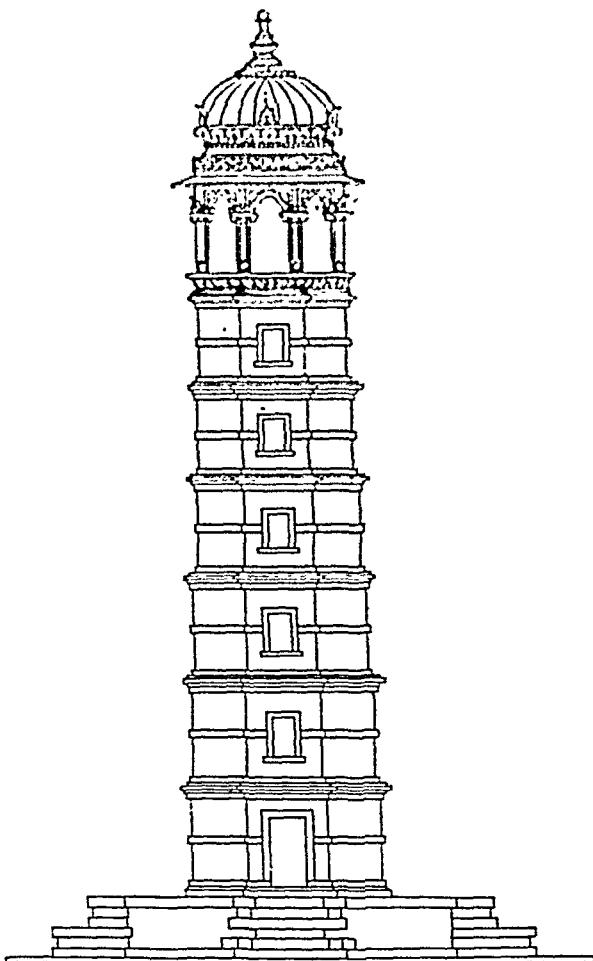
आचार्यदेव श्री विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज साहेब
की अमर स्मृति में

कर इस मंदिर की आशातना को दूर करना है। वहां महोत्सव की समाप्ति के बाद आपश्री शिवगंज पधारे।

सांड़ेराव निवासी श्री घीसुलालजी, महाराजश्री के पास शिवगंज आये और उनसे सांड़ेराव में चातुर्मास करने की प्रार्थना की। गुरुदेव का संकल्प तो था ही। मुनिराजजी ने कहा, "चाहे कोई विनती करे या न करे मुझे सांड़ेराव में चातुर्मास करना ही है। मुझे उपधान वगैरह नहीं करवाना किन्तु मंदिर के चौगान में जाली लगवानी है।" उस सद्गृहस्थ ने कहा, "मैं अकेला तो यह कार्य नहीं करवा सकता किन्तु सहयोग अवश्य दूंगा।" इस प्रकार गुरुदेव का चातुर्मास सन् १६६६ में सांडेराव में निश्चित हुआ।

इस भव्य प्राचीन मंदिर में जाली का कार्य करीब रु० ४०,०००) का था। जब आपका चातुर्मास प्रवेश हुआ और आपने उपदेश दिया तब वहाँ के लोग बाजार में बातें करने लगे कि यहाँ तो रु० ४००) का कार्य होना भी मुश्किल है क्योंकि यहाँ की परिस्थिति विचित्र है। मुनिराजजी का कोई स्वार्थ तो था ही नहीं। वे तो सबकी शान्ति के इच्छुक है। साधु-महात्माओं का सदा समभाव रहा है। उनकी अभिलाषा रहती है—

> शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।
> दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥२१॥ बृहच्छान्ति स्तोत्र

अखिल विश्व का कल्याण हो, प्राणी परोपकार में तत्पर बनें, व्याधि, दुःख, दैन्य आदि नष्ट हों और सर्वत्र मनुष्य सुखी हों।

गुरुदेव इस कार्य के लिये निरन्तर आठ दिनों तक उपदेश देते रहे। प्रभु की अनुकम्पा से और गुरुदेव के संयम के प्रताप से रुपयों की वर्षा होने लगी। जब जाली के कार्य जितनी रकम हो गई तब वहां के भक्तजनों ने आपश्री से निवेदन किया कि इस मंदिर का जीर्णोद्धार करना जरूरी है क्योंकि लगभग चार सौ वर्षों में इसका कोई कार्य नहीं हुआ है। आपश्री तो इस मंदिर का जीर्णोद्धार करवाना ही चाहते थे। इसके लिये आपने उपदेश दिया जिससे कुछ रकम और एकत्र हुई। कार्यकर्तागण चन्दा मंडाने बम्बई, पूना आदि गये और वहां पर भी सांड़ेराव निवासियों से रकम मंडाई।

मंदिरजी के चौगान में सुदृढ़ जाली बनी है जिसका करीब रु० ४५०००) खर्च हुआ है। मंदिर के गर्भगृह व गूढमंडप में काँच का काम था। काँचों की चमक नष्ट हो गई थी। उन सबको निकाल कर संगमरमर के पत्थर लगाये गये हैं। देव कुलिकाओं आदि में भी संगमरमर का कार्य हुआ है। मंदिर के पीछे एक पटशाला श्री भीकमचन्दजी चतरभाणजी ने आपके उपदेश से बनवाई है। इसमें भिन्न-भिन्न भक्तों ने सिद्धचक्रयन्त्रादि के पट लगवाये हैं। आपके सदुपदेश से मंदिर के प्रवेशद्वार का किंवाड़ व जाली श्रीमान् सरदारमलजी लुम्बाजी ने रु० ११००) की बोली लगाकर रु० ६०००) की लागत के बनवाये हैं। इस मंदिर का जीर्णोद्धार जाली आदि का कार्य लगभग ढाई लाख रुपयों में हुआ है।

मंदिर का इतिहास – यह मंदिर करीब दो हजार वर्ष पुराना है। इसमें चौबीस देव कुलिकाएँ हैं। मंदिर जन-पथ के स्तर से छः फीट नीचा है। अन्दर ऐसी नालियाँ बनी हुई हैं कि लगातार चौबीस घण्टे वर्षा होने पर भी सारा पानी उनमें होकर न जाने कहाँ जाता है, इसका पता भी नहीं चलता। केवल नालियों के मुख दिखते हैं। प्राचीन काल की निर्माण-कला का यह सुन्दर नमूना है। इस मंदिर की प्राचीनता व इसके प्राचीन लेखों का सांड़ेराव नामक पुस्तक से पता चलता है। यह पुस्तक गांव की देवस्थान पेढी पर प्राप्य है।*

---

* सांड़ेराव नामक पुस्तक के लेखक हैं – पूज्य मुनिराज श्री विशाल-विजयजी। प्रकाशक हैं – श्री यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, गांधी चौक, भावनगर।

वसन्त-प्रभा या नूतन उपाश्रय भवन

(सांड़ेराव उपाश्रय भवन का निर्माण)

मैं नवम्बर सन् १९६८ में गुरुदेव के दर्शनार्थ सांड़ेराव गया। वहां पर नवीन उपाश्रय भवन का उद्घाटन आपश्री की अध्यक्षता में होने वाला था। प्राचीन भव्य मंदिर के सामने यहां पर प्राचीन उपाश्रय भवन था। अब नूतन भवन बन गया है। इसे देखकर मैं चकित रह गया। मैंने देखा कि वह पुराना भवन कहां छू-मन्तर हो गया। नवीन भवन ने मुझे मंत्रमुग्ध कर दिया। इसकी बनावट, इसकी साज-सजावट एवं इसकी स्थिति नयनाभिराम है। मैं सोचने लगा—"दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात्। सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः॥" —आनन्दवर्धनाचार्य

काव्य-मर्मज्ञ आनन्दवर्धनाचार्य ने वसन्तागमन का जो वर्णन किया है, वह इस नूतन उपाश्रय भवन को देखकर मुझे सार्थक प्रतीत होता है।

वे ही पुराने वृक्ष हैं, पर वसन्त के रस संचार से उन्हें नवीन रूप मिल जाता है। किसी में नवीन कोपलें निकल जाती हैं, किसी में पुष्पों का विलास हो जाता है। कवि की भी यही स्थिति है। वह भी प्रकृतिरूपी उद्यान को विकसित करने वाला वसन्त ही है। वह किसी पुराने कविता-वृक्ष में सुन्दर काव्य-पुष्प लगाता है। वह जीर्ण-शीर्ण कविता-कानन को पल्लवित व पुष्पित कर उसे नया वेश पहिनाता है।

पुराना उपाश्रय अब नये भवन में बदल गया है। मुनिराजजी ने यद्यपि इसे सुन्दर एवं अनुकूल रूप प्रदान करवाया है फिर भी अधिष्ठायक देव मणिभद्रजी की देव कुलिका इसमें पूर्ववत् स्थित है। यह देव कुलिका इस भवन में ऐसी लगती है मानों कोई महान् साधक अपनी साधना में लीन हो।

पुराना उपाश्रय भवन एक हजार वर्ष से भी अधिक पुराना था। वह अत्यन्त ही छोटा था और हवादार नहीं था। इसकी दशा भी अत्यन्त दयनीय थी। चिमगादड़ों के बैठने के कारण इसमें गन्दगी

रहती थी। इस कारण इसमें कई वर्षों से साधुगण नहीं ठहरते थे। अंधकार भी इसमें विशेष रहता था। इस उपाश्रय के उद्धार करवाने के लिये मुनिराजजी ने उपदेश दिया जिससे प्रभावित होकर श्रीमान् शेषमलजी जसराजजी मेहता तथा श्रीमान् घीसुलालजी भीकमचन्दजी पोरवाल की भावना इसके उद्धार की हुई व श्री संघ के समक्ष इन दोनों सज्जनों को इसे पुनः निर्माण का आदेश दिया गया। यह उपाश्रय लगभग एक लाख रुपयों की लागत से बना है। यह अत्यन्त ही सुन्दर, प्रकाशवान व हवादार है। इस उपाश्रय का निर्माण-कार्य श्री पुखराजजी हेमाजी कामदार की देखरेख में हुआ है। इसका उद्घाटन मार्गशीर्ष शुक्ला ६, सोमवार सं० २०२५ को हुआ।

सांड़ेराव में अन्य शुभ कार्य भी गुरुदेव की कृपा से हुए हैं। यहां के पंचों ने देव द्रव्य के रु० ४५००) पीने के पानी के कुएं पर लगा दिए किन्तु यहां की विचित्र परिस्थिति के कारण वापिस जमा न हो सके। यहां कितने ही मुनिराजों ने उपदेश दिये किन्तु कुछ भी नहीं हुआ। लोग देव द्रव्य का पानी पीते थे किन्तु आपश्री ने उपदेश देकर रु० ६५००) साधारण द्रव्य में एकत्र करवाये व देव द्रव्य का कर्जा चुकवाया।

और भी आपश्री के उपदेश से श्रीमान् चुनीलालजी खुशालजी को आत्मवल्लभ व्याख्यान भवन का आदेश दिया गया है। यह ओसवाल बगीची में लगभग रु० ४००००) की लागत से बनेगा। कार्य शुरू है। मुनिराज के जहां-जहां चरण पड़ते हैं वहां नया उत्साह एवं नवीन जीवन लहराने लगता है। आपके शुभागमन से जनजीवन में चेतना आ जाती है।

मरुधररत्न अलंकरण

महान् व्यक्ति यश की इच्छा नहीं रखते। यश, सम्मान आदि उनके चरणों में अपने आप डोलते हैं। ऐसे निश्चिन्त सज्जनों का जीवन विश्व के लिए ही होता है। वे अपने जीवन में ज्ञान, संयम और त्याग की ज्योति जलाते हैं। उसका प्रकाश स्वतः फैलता है। जहाँ वे जाते हैं, अंधकार अपने आप दूर भागता है। दीपक को पूछा – "हे दीप, तू स्वयं जलता है और विश्व को प्रकाश देता है।" दीपक ने उत्तर दिया, "मुझे पता नहीं; मैं तो स्वाभाविक जीवन व्यतीत करता हूँ।" उसी प्रकार पुष्प से पूछा, "हे पुष्प तू धन्य है, सर्वत्र सुगन्ध बिखेरता है।" पुष्प कहता है, "इसका मुझे पता नहीं।"

सज्जन मनुष्य भी दीप एवं पुष्प तुल्य हैं। जहाँ कहीं वे जाते हैं प्रकाश फैलाते हैं और सुगन्ध बिखेरते हैं। उनके उद्देश्य स्पष्ट हैं। वे दुर्गन्ध को दूर करने के लिए ही अवतरित हुए हैं। वे अंधकार को दूर करने के लिए ही कर्म पथ पर बढ़ते हैं। जहाँ-जहाँ उनके चरण पड़ते हैं वहाँ फूल ही फूल बिछ जाते है।

मुनिराज वल्लभदत्त विजयजी ने भी समाज की पीड़ा का अनुभव किया है; व्यक्ति के दुःख-दैन्य को समझा है और इसीलिए वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार कष्ट निवारण का प्रयत्न करते है।

ऐसे निस्पृह महात्मा के गुणों से प्रभावित होकर भक्तजन श्रद्धा के पुष्प चरणों में अर्पित करते रहते हैं।

सांड़ेराव में उपधान तप की माला परिधान की शुभ वेला में श्री संघ ने मुनिराजजी को आपके लोकोपकारी कार्यों से प्रभावित होकर मरुधररत्न की पदवी से संवत् २०२३, फाल्गुन वदी १३ को अलंकृत किया। पदवी की कम्बल व चद्दर चढ़ाने की वोली रु० ४१००) की हुई। यह धनराशि निःस्वार्थ एवं परोपकारी सन्त ने मन्दिर के जीर्णोद्धार में दिलवाई। इस पदवी का उपक्रम मंदिर के जीर्णोद्धार में द्रव्य-वृद्धि के लिये हुआ था न कि पदवी की इच्छा से।

इस संत को न यश की चाह है और न सम्मान की। इनकी जीवन झांकी मुझे इन पंक्तियों में देखने को मिली :

अपने ही यश में झूम-झूम
जय टेर लगाते चिल्लाते
कितने जन-यूथ निकल जाते
छायामय पुतलों के पीछे
क्या तुम्ही रहोगे वहां अलग ? — गीतांजली

महत्त्वाकांक्षी लोग अपने यशोगान स्वयं करते हुए चले जाते हैं परन्तु तुम इन सबसे दूर रह कर सेवा में लीन हो। धन्य है तुम्हारा जीवन।

सांड़ेराव में उपधान तप — पूज्य मुनिराजजी के सदुपदेश से प्रभावित होकर श्रीमान् सूरजमलजी पुखराजजी ने पौष मास में सांड़ेराव में उपधान तप करवाया। उपधान तप-मालाओं की बोली करीब रु० ३००००) हुई जो मंदिरजी के जीर्णोद्वार में लगाई गई।

उपधान तप माला परिधान व पदवी प्रदान कार्य पूज्यपाद आचार्यश्री लावण्य सूरिजी महाराज साहब के पट्टधर आचार्यश्री विजयदत्त सूरिजी के शिष्य-रत्न आचार्यश्री विजय सुशील सूरिजी महाराज के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस कार्य में मुनि श्री मनोहर विजयजी महाराज का पूर्ण सहयोग रहा।

श्री मानदेव सूरि ज्ञान मंदिर

नाड़ोल में संघ के योग्य उपाश्रय नहीं था। पुराने उपाश्रय में ग्रीष्मऋतु में विच्छुओं का उपद्रव रहता था। यह उपाश्रय भवन हवादार न होने से गर्मी में कष्ट होता है। इन सबको ध्यान में रखकर आपश्री ने उधर विचरते हुए नया उपाश्रय भवन वनाने का उपदेश दिया। इस तरह तीन वर्ष तक उधर विहार में गुरुदेव उपदेश देते रहे किन्तु जब स्थिति परिपक्व हुई तब कार्य बना। सम्वत् २०२३, चैत्र शुक्ल ८ के पावन दिवस में रु० २४०००) उपाश्रय-निर्माण हेतु एकत्र हुए। यह निर्माण-कार्य श्रीमान् पुखराजजी मूलचन्दजी की देखरेख में हो रहा है। आपका इसमें बड़ा उत्साह है। उपाश्रय भगवान् नेमिनाथजी के मंदिर के पास बना है। लघु शान्ति स्तव के रचयिता आचार्यदेव की स्मृति में इसका नाम श्री मानदेव सूरि ज्ञान मंदिर रखा है।

टिप्पणी — लघु शान्ति स्तव की रचना कविभूषण आचार्यदेव मानदेव सूरि ने की है। वीर निर्वाण की सातवीं शताब्दी के अंतिम भाग में शाकम्भरी नगरी में भयंकर महामारी फैल गई। जनता अत्यन्त ही पीड़ित हो गई। यह रोग इतना भारी था कि इसमें औषधियां और वैद्यगण कुछ भी नहीं कर सके। भक्तों की प्रार्थना पर आकाशवाणी हुई, "तुम चिन्ता क्यों करते हो? नाडूल (वर्तमान नाड़ोल–जिला पाली) नगरी में श्रीमान् देवसूरिजी विराजते हैं। उनके चरणों के प्रक्षालन-जल का घर-घर में छिड़काव करो जिससे सम्पूर्ण उपद्रव शान्त हो जाएगा। इस वचन से आश्वासन पाकर श्री संघ ने वीरदत्त नामक एक श्रावक को प्रार्थनापत्र देकर नाडूल नगरी भेजा। सूरिजी परम तपस्वी, ब्रह्मचारी और मन्त्रसिद्ध पुरुष थे तथा लोकोपकार करने में परम निष्ठा रखते थे। आचार्यश्री ने शान्ति स्तव स्तोत्र बनाकर दिया और चरणोदक भी दिया। शाकम्भरी नगरी में इस स्तोत्र के पाठ से तथा चरणोदक के छिड़काव से महामारी का उपद्रव शान्त हो गया तथा आनन्दमंगल की बांसुरी बजने लगी। आचार्यश्री की जन्मभूमि नाड़ोल नगरी थी। यहां ही आपका स्वर्गवास हुआ था। इस स्तवन में भगवान् श्री शान्तिनाथजी का गुणगान किया गया है।

शिवमस्तु सर्वजगत

(सादड़ी में उपधान तप और विघ्न-निवारण)

सादड़ी में श्रीमान् शेरमलजी, घीसुलालजी सुपुत्र देवीचन्दजी उपधान तप को आचार्यश्री विकासचन्द्र सूरिजी द्वारा करवा रहे थे। मुनिराजजी को भी पधारने के लिये विनती की, किन्तु बिजोवा के उपधान तप के कार्य में लगे रहने के कारण आप प्रारम्भ में उपस्थित न हो सके। उपधान तप करने वाले तपस्वी अपने संबंधियों की बीमारी के समाचार सुनकर उपधान तप छोड़कर जाने लगे। इस तरह २०–२५ व्यक्ति चले गये। तब उपधान तप कराने वाले श्रीमान् घीसुलालजी आपके पास आये और कहने लगे कि यदि इस तरह से लोग जाते रहे तो सारा उपधान बिगड़ जाएगा। आपश्री ने उन्हें आश्वासन देकर भेजा व स्वयं विहार कर शीघ्र सादड़ी पहुंच कर शान्ति जाप कर मन्त्राभिषिक्त वासक्षेप डाला, तब शान्ति हुई और कार्य निर्विघ्न समाप्त हुआ।

मार्गदर्शक गुरु

गुरु मार्गदर्शक हैं। वे व्यक्ति और समाज को सन्मार्ग दिखाते हैं। मुनिराजजी ने जनता का सही मार्गदर्शन किया है। मारवाड़ में प्राय: ऐसी प्रथा है कि लोग बोली बोलने के एक वर्ष बाद बोली की रकम जमा कराते हैं किन्तु इससे अव्यवस्था फैलती है और कई अभावग्रस्त कार्यो का संचालन धनाभाव के कारण रुक जाता है। गुरुदेव के उपदेश से कितने ही कार्य भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में चलते हैं। कहीं जीर्णोद्धार हो रहा है, किसी विद्यार्थी को विद्याध्ययन हेतु छात्रवृत्ति ही चाहिए, किसी ग्रन्थालय में पुस्तकों की आवश्यकता है, किसी शिक्षण संस्था का पौधा धनाभाव के कारण मुरझा रहा है। इन सब कामों के लिए धन चाहिए। समाज में दानी, शिक्षाप्रेमी तथा उदार लोग हैं। गुरुदेव उनको विविध कार्यो में दान देने के लिए सदुपदेश देते ही रहते हैं।

सादड़ी उपधान की माला की बोली शुरू होने के पूर्व आपश्री ने मार्गदर्शन करते हुए कहा, "बोली की रकम शीघ्र जमा करनी होगी। ज्यादा से ज्यादा तीन मास की मुद्दत देते हैं। अपने पास रकम हो तो बोली बोलना अन्यथा बोलने की कोई आवश्यकता नहीं है।" उपधान तप की मालाओं की बोली कुल रु० ६००००) की हुई। यह समस्त धनराशि भिन्न-भिन्न स्थानों के मंदिरों के जीर्णोद्धार में भेज दी गई है।

कई कहते हैं कि आचार्यश्री वल्लभ सूरिजी के साधु व अनुयायी श्रावक मालाओं की बोली को साधारण खाते में ले जाकर देव द्रव्य खाते हैं। ऐसे लोग निराधार बातें करते हैं।

गुरुदेव वल्लभदत्त विजयजी ने माला की बोलियों की रकम मंदिरों के जीर्णोद्धार में भिजवाकर एक आदर्श उपस्थित किया है।

वल्लभ कीर्ति-स्तम्भ[1]

महान् व्यक्ति सदा अमर रहते हैं। यद्यपि उनका भौतिक शरीर नष्ट हो जाता है किन्तु उनकी यश-सुगन्ध सदा रहती है। यह यश-सुगन्ध उनके विशिष्ट लोकोपकारी कार्यरूपी पुष्पों से सदा फैलती रहती है। वैसे तो मनुष्य हाड़-मांस का पुतला है, किन्तु मनुष्यत्व जिसे कहते हैं वह दुर्लभ है। इस मनुष्य में प्रेम, करुणा, त्याग, सेवावृत्ति आदि पावन धाराएँ जब मिल जाती हैं तब उसका रूप गंगा के समान पावन हो जाता है।

मुनिराजजी ने पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री वल्लभ सूरिजी को गुण-सागर माना है। उन्हें युगद्रष्टा, युगस्रष्टा एवं युगप्रवर्त्तक के रूप में देखा है। उनके जीवन से प्रभावित होकर उन्होंने उन्हें इस युग का कल्पवृक्ष कहा है। यह उपमा 'वल्लभ' के लिए निस्सन्देह सार्थक है। धरती को स्वर्ग बनाने वाले, सबको सुख की कामना करने वाले सन्त जन-मानस में आनन्द भर देते हैं। महाकवि महर्षि अरविंद घोष ने ऐसे सन्त-पुरुषों को दिव्यात्मा बताया है—

Earth shall be made a home of heaven's light,
A seer-born shall lodge in human breasts.[2]

अर्थात्—सन्त जन्म लेकर इस धरती को स्वर्ग के दिव्य प्रकाश से आलोकित करता है। वह स्वर्ग-दूत के रूप में जन-मानस में निवास करता है। आचार्यदेव वल्लभ सूरिजी भी ऐसे ही दिव्यात्मा थे जो जन-मानस-पटल पर अपने आदर्शों की छाप अंकित कर गये हैं। ऐसे दिव्यात्मा की पावन स्मृति में मुनिराज श्री वल्लभदत्त विजयजी महाराज के उपदेश से श्री पार्श्वनाथ उम्मेद विद्यालय भवन, फालना

---

[1] कीर्ति-स्तम्भ के प्रेरक यशस्वी आचार्यदेव श्री वल्लभ सूरिजी का जीवन-परिचय आगे दिया जा रहा है।

[2] सावित्री महाकाव्य : महर्षि अरविंद घोष मूल—अंग्रेजीभाषा में—पृष्ठ ५११, ८,९ पंक्तियां।

के ठीक सामने वल्लभ कीर्तिस्तम्भ का निर्माण-कार्य प्रारम्भ हो गया है। यह कीर्तिस्तम्भ भूमि से ६१ फुट ऊँचा होगा। यह स्तम्भ अष्टकोण का बनेगा। ऊपरी खंड में आचार्यजी की कलात्मक मूर्ति प्रतिष्ठित की जाएगी। नीचे के खंड पर बाहर चारों ओर शिलाओं पर आचार्यजी की पावन वाणी उत्कीर्ण होगी। यह कार्य लगभग रु० ७५०००) की लागत से बनने की संभावना है।

कीर्तिस्तम्भ-निर्माण की पृष्ठभूमि—गुरुभक्त श्रीमान् जसराजजी धनरूपजी खुड़ाला निवासी की यह इच्छा थी कि वल्लभ विहार में पूज्य आचार्यश्री वल्लभ सूरिजी की मूर्ति स्थापित की जाय, किन्तु यह उपाश्रय होने से इसमें मूर्ति बैठाने को मना कर दिया। तब उनकी इच्छा अलग गुरु मन्दिर बनाने की हुई। यह इच्छा पूर्ण होने के पूर्व ही उनका देहान्त हो गया। उसके बाद मुनिराजजी ने आचार्यजी की अमर कीर्ति का स्मारक स्थापित करने हेतु उपदेश दिया। निर्माण-कार्य अब श्रीमान् मूलचन्दजी जसराजजी खुड़ाला निवासी संभालते हैं।

मुनिराजजी की इच्छा है कि शिल्पकला की दृष्टि से यह स्मारक अच्छा बने और शिलाओं पर गुरुदेव की वाणी सुन्दर रूप से अंकित हो।

आप स्वयं शिल्पकला-मर्मज्ञ हैं और आपके निर्देशन में कार्य सुचारु रूप से चल रहा है।

श्रीवल्लभगुरुभ्यो नमः

विश्व-वल्लभ

आचार्यदेव श्री वल्लभ सूरिजी का जीवन-परिचय

ज्ञान का दीपक जला, भारत के चारों धाम में ।
चार चांद लगा दिये, आतम गुरु के नाम में ।।
महिमा बड़ी है सद्गुरु, वल्लभ तुम्हारे नाम में ।
गा रही है गीत तेरे, सुन्दरी सुरधाम में ।।

– मुनि वल्लभदत्त विजय

आचार्यदेव श्री विजय वल्लभसूरिजी वास्तविक अर्थ में साधु थे । वे युगधर्म को अच्छी तरह जानते थे । उन्होंने समाज जो अज्ञान के अंधकार से आवृत देखा और यह भी अनुभव किया कि विना शिक्षा प्रचार के समाजोत्थान असंभव है । युगपुरुष समाज की नाड़ी परखने में कुशल धन्वन्तरि तुल्य होते हैं । इस दिव्य पुरुष ने यह संकल्प कर लिया कि स्थान-स्थान पर सरस्वती मंदिर स्थापित कराये जायँ । फलस्वरूप मरुभूमि गोड़वाड़ में श्री पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज, फालना तथा पर्श्वनाथ उच्च विद्यालय, वरकाना की स्थापना हुई । अम्बाला का श्री आत्मानंद जैन कॉलिज और वम्बई में स्थित महावीर विद्यालय आपके लगाये हुए कल्पवृक्ष हैं । हजारों विद्यार्थी इन विद्यालयों में पढ़कर लाभ ले रहे हैं और लेंगे । सभी गुरुदेव के पावन चरणों में अपनी श्रद्धा की पुष्पाञ्जलियाँ अर्पित कर रहे हैं । इस दिव्य महात्मा का स्वप्न था 'जैन विश्वविद्यालय' की स्थापना हो जिसमें सभी विद्यार्थी पढ़ सकें और उसमें जैन दर्शन की पीठिका (chair) भी हो । जैन दर्शन का सम्यग् अध्ययन भी इसमें हो और अन्य दर्शनों का भी सापेक्षित अध्ययन हो । उनका दिव्य संदेश उन्हीं की दिव्य वाणी में मैं प्रस्तुत करता हूं । "होवे कि न होवे किन्तु मेरा आत्मा यही चाहता है कि साम्प्रदायिकता दूर होकर जैन समाज मात्र महावीर स्वामी के झण्डे के नीचे एकत्रित होकर श्री महावीर की जय बोले । शिक्षा की वृद्धि के लिये एक 'जैन विश्वविद्यालय'

नामक संस्था स्थापित होवे। फलस्वरूप सभी शिक्षित होवें और भूख से पीड़ित न रहें। शासन-देवता मेरी इन सब भावनाओं को सफल करें, यही चाहना है।"

आचार्यदेव की यह इच्छा अभी तक स्वप्न बनी हुई है। गुरुदेव के चरणसेवीगण अनेक हैं किन्तु अभी तक उनकी यह पावन मनः कामना पूर्ण नहीं हुई है। पूज्य वल्लभ के चरणसेवी मुनिभूषण वल्लभदत्त विजयजी से यह आशा है कि वे इस स्वप्न को साकार करेंगे।

आचार्यजी के उपर्युक्त शब्दों में विश्वकरुणा की अजस्र धारा बह रही है। सन्त-पुरुष की वाणी-गंगाधारा में कितनी निर्मलता एवं पावनता है! ऐसे गुरु के जीवन को लिखते हुए मुझे अमर-ग्रन्थ अध्यात्म कल्पद्रुम की ये पीयूषवर्षिणी पंक्तियां बरबस स्मरण हो आती हैं :-

गजाश्वपोतोक्षरथान् यथेष्ट -
पदाप्तये भद्र ! निजान् परान् वा।
भजन्ति विज्ञाः सुगुणान् भजैवं,
शिवाय शुद्धान् गुरुदेवधर्मान् ॥४॥[1] - उपेन्द्रवज्रा

पूज्य आचार्यश्री जैसे सद्गुरु ही जीवन एवं समाजोत्थान में प्रेरक हो सकते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सेवाएं जैन व जैनेतर समाज के लिए समान रूप से उपयोगी रही हैं। उनका मन्तव्य था कि मनुष्य में मनुष्यत्व आवे। आप जैनाचार्य क्रांतदर्शी श्रीमद् विजयानन्द सूरि श्री आत्मारामजी महाराज के शिष्य-रत्न थे। गुरु के दिव्य चरणों में आचार्यश्री कल्याणमय संयम मार्ग पर अग्रसर हुए। जीवन में जो अमूल्य निधि वल्लभ ने गुरुदेव से प्राप्त की उसे उन्होंने बहुजनहिताय बहुजनसुखाय के लिये योजित कर दी। गुरु वल्लभ ने अज्ञान को ही

---

१ अध्यात्म कल्पद्रुम आचार्यश्री मुनि सुन्दरसूरीश्वर कृत, हिन्दी भाषान्तर- पृष्ठ ४४२ द्वादश अधिकार, श्लोक ४। हिन्दी रूपान्तर - हे भद्र! जिस प्रकार बुद्धिमान् प्राणी इच्छित स्थान पर पहुंचने के लिये अपने तथा दूसरों के हाथी, घोड़े, गजारियां, बैल, रथ अच्छे देखकर लेते हैं, इसी प्रकार मोक्ष-

प्राणिमात्र के दुःख का कारण समझा था अतः इसे मिटाने के लिये उन्होंने जीवन भर प्रयास किया।

पूज्य आचार्यदेव की स्मृति में कीर्तिस्तम्भ की स्थापना गुरु-चरणों में भक्ति का कल्प-पुष्प है।

पूज्य आचार्यजी का जन्म कार्तिक शुक्ला द्वितीया वि० सं० १९२७ के दिन गुजरात राज्यान्तर्गत वड़ौदा के श्रीमाली परिवार में सुप्रसिद्ध सेठ श्री दीपचन्द भाई के गृह में पूजनीय माता इच्छा वाई की पुनीत कुक्षि से हुआ था। आपश्री की दीक्षा सं० १९४४ के वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को राधनपुर में हुई। मार्गशीर्ष शुक्ला ५ सं० १९८१ को लाहौर में आपश्री को आचार्य-पदवी से अलंकृत किया। आपका स्वर्गवास आश्विन वदी १०, मंगलवार, सं० २०११ को रात्रि को वम्वई में हुआ।

गुरुदेव के स्वर्गवास पर कुछ प्रशस्तियां यहां उद्धृत कर रहा हूं — वम्वई प्रदेश के सुप्रसिद्ध नेता श्री स० का० पाटिल ने श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा—"भारत में दो वल्लभ हो गये हैं—एक ने धर्मक्षेत्र को केन्द्र में रखकर कार्य किया और दूसरे ने राजनीतिक क्षेत्र को।"

श्री क़िशोरीलाल मश्रुवाला के गुरु श्री केदारनाथजी ने कहा, "समाज सुधार और शिक्षण को महत्त्व देने वाली और उसके वास्ते सदैव प्रयत्नशील रहने वाली उनके जैसी विभूतियां साधु सम्प्रदाय में क्वचित् मिलेंगी। वे सम्प्रदाय का अभिमान न रखकर सवके प्रति समभाव रखते थे।"

आपके उपदेश की कुछ मणियां

स्वधर्म का अर्थ है आत्मधर्म और परधर्म का अर्थ है मायाधर्म, पौद्गलिक धर्म। इसलिये स्वधर्म ही सत्य धर्म, आत्मशान्ति, आत्म-शुद्धि और आत्मकल्याण के लिये सर्वोत्तम है।

युगद्रष्टा के रूप में पाकिस्तान से आये हुए पीड़ित भाई-वहिनों के लिये आपने जनता को सहायता करने की अपील में कहा था—"जो हिन्दू, सिक्ख और जैन भाई-वहिन पाकिस्तान से दुःखी होकर आये हैं, वे सव तुम्हारी सहायता के योग्य हैं। उनको तुम अपने भाई-वहिन समझो और यह मानो कि उनकी सेवा करना हमारा कर्तव्य है।

प्राणिमात्र से प्रेम और करुणा रखने वाले आचार्यश्री ने कहा— "हम सब एक हैं, हम सबको हिलमिल कर रहना चाहिये। जब हम अपने पड़ौसी के दुःख से दुःखी और सुख से सुखी होना सीखेंगे तभी हम खुदा के सच्चे बन्दे तथा ईश्वर के सच्चे भक्त हो सकेंगे।"

शान्ति के दूत ने कहा—महानुभावो! शान्ति सुख है और अशान्ति दुःख है। शान्ति में ही अपना कल्याण है। लोगों के बुरा कहने और आक्षेप करने से हमें क्यों उत्तेजित हो जाना चाहिए? हमारा काम शान्ति रखना है, इसलिए हमें अपना काम करना चाहिए।

क्षमा के सम्बन्ध में—क्षमा का लेन-देन जिस दिन होता है, वह दिन बड़ा ही महत्त्वपूर्ण और पवित्र समझा जाता है। यह क्षमा का लेन-देन मन के भावों को निर्मल करने से और राग-द्वेष हटाने से होता है। भगवान महावीर की यह क्रिया हमको धरोहर में मिली है।

देश के स्वतंत्रतारूपी अमूल्य धन को सुरक्षित रखने के लिये आपने कहा—देश के नव-निर्माण के कार्य में सबको एक होकर काम करना, हमारे गांवों का सुधार होना, हमारे गरीबों की गरीबी मिटाना, धर्म की आराधना करना, हमारे करोड़ों अशिक्षितों को शिक्षित बनाना और सबको रोटी दिलाना। ये कार्य तभी होंगे जब सुशिक्षित लोग इन भावनाओं को समझकर और कमर कसकर देश-कल्याण के कामों में लग जाएंगे।

इन शब्दों में देश की स्वतंत्रता के प्रति आपकी प्रेमभावना और गरीबों के प्रति सहानुभूति प्रकट होती है।

पावन सात क्षेत्रों में श्रावक और श्राविका क्षेत्रों का महत्त्व बताते हुए आपश्री ने फरमाया था—"आप अच्छी तरह जानते हैं कि हमारे यहां सात क्षेत्र हैं। वे हैं—साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, जिन-प्रतिमा, जिन मंदिर और ज्ञान। इनमें श्रावक-श्राविका रूप दो समर्थ क्षेत्र अन्य पांच क्षेत्रों के पोषक हैं। वर्तमान समय में जो-जो क्षेत्र पीड़ित हैं उन-उन क्षेत्रों की सहायता करना समर्थ क्षेत्रों का प्रथम कर्त्तव्य है। शास्त्र-दृष्टि से भी हम अपने धनवान तथा शक्तिशाली भाग्यवानों को सूचित करते हैं कि ऐसे नाजुक समय में अपने साधर्मी भाइयों के दुःख दूर करने में अवश्य लग जाएं। सार्धमिक वात्सल्य का

अर्थ केवल मिष्टान्न खिलाना ही नहीं है अपितु दुःखी साधर्मी भाइयों को काम-काज में लगाकर उनको आत्मनिर्भर बनाना भी सच्चा साधर्मी वात्सल्य है। छोटे से उत्तम कार्य भी बड़े मूल्यवान होते हैं—

"कभी छोटी-सी बात भी महान् स्मारक बन जाती है। छोटा-सा दीपक भी अंधेरे को हटाकर प्रकाश की किरणें फैला देता है।"

इन उपदेशों के द्वारा आचार्यश्री ने जनता को जो अमृत पिलाया है वह निस्सन्देह स्तुत्य है।

ऐसे ही उपदेशात्मक सार-वाक्य वल्लभ कीर्ति-स्तम्भ के शिला-खंडों पर उत्कीर्ण किये जाएंगे।

प्रेम-सन्देश

श्री मुछाला महावीर राजकीय विद्यालय की स्थापना

धाणेराव में राजकीय माध्यमिक शाला ओसवाल समाज के मकान में चल रही है। विद्यार्थियों की संख्या अधिक होने से बड़े मकान की आवश्यकता जान कर ग्राम पंचायत ने नया मकान बनाना प्रारम्भ किया था। कुछ कमरे अधूरे ही बन पाये कि किसी कारणवश निर्माण-कार्य ठप्प हो गया। यह कार्य चार-पांच वर्षो से अधूरा ही पड़ा है। मुनिराजजी कई वार यहां पधारे व इस कार्य के लिये उपदेश दिया किन्तु कार्य न हुआ क्योंकि यहां जैन-जैनेतरों में कुछ मनमुटाव था। इस वार आपका चातुर्मास यहां हुआ। कृष्ण जन्माष्टमी के दिवस आपका सार्वजनिक व्याख्यान हुआ। इस व्याख्यान में ग्राम जनता उपस्थित हुई थी। आपश्री ने भगवान् कृष्ण के जीवन पर सुन्दर प्रवचन दिया और स्कूल भवन निर्माण के लिए भी उपदेश दिया।

आपके सदुपदेश से जनता में प्रेम स्थापित हो गया और उनमें अधूरे स्कूल भवन को पूर्ण करने की भावना जागृत हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि केवल दो दिन में रु० ७१०००) एकत्र हो गये। चन्दे का कार्य शुरू है। कुल कार्य करीब सवा लाख रुपये का होगा। अधूरा भवन भी स्कूल निर्माण कमेटी को ग्राम पंचायत ने सौंप दिया है। इस भवन का नाम – श्री मुछाला महावीर राजकीय विद्यालय होगा। यह नाम धाणेराव के समीप भगवान् मुछाला महावीर (तीर्थ) पर रखा गया है।

यह भवन निर्माण कार्य जैन संघ ही करवाएगा। ऐसे सार्वजनिक हित के कार्यो से मुनिराजजी जनता के श्रद्धा-भाजन बन गये हैं।

ऐसे समदृष्टि वाले सज्जन पुरुषों के नाम जन-मानस-पट पर चिरकाल तक अंकित रहते हैं –

जो सुधा पिलायेगा धरती के कण-कण को,
इतिहास उसी के चरणों पर झुक जायेगा।

– महेश संतोषी की कविता से

विविध कार्य-कलाप

१. प्रतिमा-विलेपन –

मुनिराजजी हस्तिनापुर के द्वितीय चातुर्मास के वाद मारवाड़ की तरफ विहार करते हुए खोड ग्राम में पधारे। यहां के मन्दिरजी के मूल नायक भगवान् श्री आदिनाथ स्वामी की प्रतिमा का कान मसाले से लगा हुआ था जिस पर विलेपन की आवश्यकता थी। प्रभु-प्रतिमा तो सुन्दर होनी ही चाहिए। प्रभु-मूर्ति के दर्शन करके हृदय में अनन्त आनन्द की लहरें उठने लगती हैं। कहा भी है –

> जो गहरे छू मेरी, चेतना जगाता है,
> नींद से उठाता है, वह उर का वासी है,
> वह तो अविनाशी है। – गीताञ्जली : रवीन्द्र

मूर्ति के अंगों में भी लेप की आवश्यकता जानकर आपश्री ने उपदेश दिया। आपके सदुपदेश से रु० २०००) एकत्र हुए तथा लेप का कार्य पूर्ण हुआ। कार्य समाप्त होने के वाद आपश्री ने शान्ति स्नात्र का उपदेश दिया तथा यह उत्सव धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

२. बाली में सभा भवन – (वाली चातुर्मास सन् १९६४ में)

बाली नगर में ओसवाल समाज के पास सामाजिक स्थान न था जिससे कि सामाजिक कार्य विवाह आदि हो सकें। अतः उन्होंने आवश्यकता देख कर जमीन खरीद कर उसकी चारदीवारी, कुआं और रसोईघर वना दिये, किन्तु बैठने के लिये शाला नहीं थी। लोगों ने मुनिराजजी से इसके लिये प्रार्थना की। तव आपने कहा कि यदि धार्मिक कार्य भी इसमें हों तो मैं इसके लिये उपदेश करूं। लोगों ने इसकी स्वीकृति दे दी। तत्पश्चात् आपके प्रभावशाली उपदेश से एक लाख रुपये एकत्र हुए। यह कार्य सम्पन्न हो गया है। इस भवन में वड़ी-वड़ी शालाएं बनी हैं तथा ऊपर हाल वना है जिसका सामाजिक व धार्मिक कार्य में उपयोग होता है। इस हाल में आपके विद्यागुरु पूज्य मुनिश्री लावण्य विजयजी की मूर्ति स्थापित की गई है। मुनिराजजी अपने उपकारी विद्यागुरु का स्मरण सदैव करते रहते हैं।

जिसने दुःख मिटा दिया, उसका स्नेह स्वभाव ।
सात जन्म तक भी स्मरण, करते महानुभाव ।।
— तिरुक्कुरल-तिरुवल्लुर रचित

३. आत्मवल्लभ हॉल – (सादड़ी चातुर्मास सन् १९६५ में)

सादड़ी में व्याख्यान भवन अनुकूल नहीं था। उसमें हवा का प्रसार न था अतः गर्मी में श्री संघ को वेहद परेशानी रहती थी। श्री संघ के योग्य ऐसा स्थान न था जिसमें सारा संघ एक साथ बैठ सके, अतः इसकी आवश्यकता देख कर मुनिराजजी ने उपदेश दिया। आपके उपदेश से सवा लाख रुपया एकत्र हुआ व कार्य सम्पन्न हुआ। इस हॉल का नाम 'आत्मवल्लभ हॉल' रखा गया। इसमें धार्मिक एवं सामाजिक कार्य होते हैं।

४. आना गांव में उपाश्रय

यहां उपाश्रय न था। साधु-साध्वी गृहस्थों के घरों में ठहरते थे। यहां की एक श्राविका व एक भाई ने दीक्षा ली। उनके दीक्षा के उपकरणों की बोली के जो रुपये एकत्र हुए थे, उनसे आपश्री ने उपाश्रय भवन बनवाने का उपदेश दिया। श्री संघ ने लगभग रु० २२,०००) की लागत से उपाश्रय भवन का निर्माण करवाया।

५. नादाना मंदिर का जीर्णोद्धार

सांड़ेराव का चातुर्मास पूर्ण होने के बाद विहार करते हुए गुरुदेव बिजोवा पधारे और नादाना मंदिर के जीर्णोद्धार के लिए उपदेश दिया जिसके फलस्वरूप रु० २,५००) का चंदा कर श्री संघ ने मंदिर के कार्यकर्त्ताओं को दिया। कार्यकर्त्ताओं ने भी और रकम एकत्र की है, कार्य शुरू है। लगभग रु० ७०,०००) जीर्णोद्धार कार्य में खर्च होंगे।

६. गोड़वाड़ युवक सम्मेलन

आप ज्येष्ठ मास में गीछेट (मेवाड़) में विराजमान थे। उस समय सादड़ी में होने वाले गोड़वाड़ युवक सम्मेलन के कुछ कार्यकर्त्ता आपसे मार्गदर्शन प्राप्त करने हेतु आपसे विनती करने आए। तब आपने उन्हें कहा कि केवल कागजी कार्रवाई में कुछ नहीं है। समाज की

ठोस कार्य की आवश्यकता है। केवल नेतागीरी से कुछ नहीं होगा। कार्यकर्ताओं ने मुनिराज की बात स्वीकार की। तब आप सादड़ी पधारे। निर्धन विद्यार्थियों को स्कूल-शुल्क व पुस्तकें प्राप्त हों इसके लिए आपने उपदेश दिया। छात्र-सहायता-कोप में रु० १५,०००) एकत्र हुए। मुनिराजजी का लक्ष्य रहा है कि जहां तहां ऐसे रचनात्मक कार्य होते रहें। युगधर्म यही कहता है। सभी राष्ट्र ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जैसे आगे बढ़ रहे हैं वैसे भारत में भी ज्ञान के दीपक गांव-गांव में जलने चाहिए। इसी से भारत का नव-निर्माण हो सकेगा।

७. काया ग्राम में धर्मशाला—ऋषभ विहार

उदयपुर से केसरियाजी तीर्थ का अन्तर चालीस मील का है। बीच में विश्राम के लिए स्थान का कष्ट रहता है। पहिले यात्रियों के लिए जगह-जगह पर धर्मशालाएं बनी हुई थीं। किन्तु अब उसमें स्कूल वगैरह चलते हैं। केवल टीड़ी गांव में मुण्डारा वाले की तरफ से एक धर्मशाला बनी हुई है। इस मार्ग से बहुत से साधु-साध्वी विचरे, सभी ने कष्ट अनुभव किया, किन्तु इसके मिटाने का प्रयत्न किसी ने नहीं किया। इस मार्ग पर साधुओं की अपेक्षा साध्वियों को ज्यादा कष्ट पड़ता है और साध्वियों के साथ जाने वाली श्राविकाओं को तो विशेष कष्ट सहन करना पड़ता है। मुनिराजजी का चातुर्मास जब उदयपुर में हुआ तब आपने इस कष्ट को मिटाने के लिए उपदेश दिया कि यहां उत्सव महोत्सव कई हो चुके हैं किन्तु इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया। ठोस कार्य तो यह है। उदयपुर श्री संघ की तरफ से एक धर्मशाला काया में बने तो शेष स्थानों पर अन्य लोगों द्वारा बनवाई जावें। आपके प्रेरणास्पद उपदेश से प्रभावित होकर कंचन बाई ने सर्वप्रथम रु० १,०००) इस कार्य के लिए दान दिये। इस बाई के पास कुल चार हजार की पूंजी ही थी किन्तु उसको इस कष्ट का अनुभव था। इस तरह रु० १२,०००) एकत्र हुए। काया ग्राम में उदयपुर श्री संघ ने जमीन खरीद कर छोटी धर्मशाला का निर्माण करवाया। इसमें दो कमरे व बरामदा बना है। इस धर्मशाला का उद्घाटन मार्गशीर्ष वदी १० सं. २०२४ को मुनिराजजी की अध्यक्षता में पूर्ण हुआ। यह कार्य श्रीमान् मनोहरलालजी चतुर, श्री फतेहलाल चेलावत, श्री भैंरूलालजी तलेसरा, श्री मनोहरसिंहजी तलेसरा,

श्री सुन्दरलालजी सिंगटवाड़िया और श्री हीरालालजी सिंगटवाड़िया की देखरेख में पूर्ण हुआ।

उदयपुर से १२ मील दूर राणकपुर रोड पर इसवाल में भी विश्राम स्थान का कष्ट था, अतः यहां की जनता ने चन्दा कर सार्वजनिक धर्मशाला बनवाई किन्तु कार्य अधूरा होने से आपसे इसमें मदद करवाने के लिए प्रार्थना की, तब आपने रु० ५००) काया गांव की धर्मशाला के चन्दे में से दिलवाये।

आपश्री ने पर्युषण पर्व के दिनों में उपदेश कर भीलवाड़ा के नूतन उपाश्रय निर्माण-कार्य में रु० २,२००) दिलवाये और आश्विन मास में भीलवाड़ा के कार्यकर्त्ताओं ने रु० १,५००) का चन्दा और मंडवाया।

८. बारापाल में धर्मशाला–ऋषभ विहार

आप उदयपुर चातुर्मास समाप्त होते ही केसरियाजी की यात्रा कर लौटते समय रात को बारापाल की पुरानी धर्मशाला में ठहरे। रात को उप-सरपंच ने आपसे कहा कि यह धर्मशाला यात्रियों के लिए बनी थी किन्तु अब इसमें पंचायत, डाकघर आदि हैं। अतः आप लोगों को स्थान का कष्ट पड़ता है। यहां एक बड़ा कमरा खाली है। इसकी मरम्मत करवा दी जाय तो ठहरने के लिए सुविधा होगी व आपको दे दिया जावेगा। आपने उस कमरे को देखा व दूसरे दिन मार्गशीर्ष वदी १० को काया में धर्मशाला के उद्घाटन पर आये हुए लोगों को व्याख्यान में यह बात कही। अगर श्री संघ के नाम लिख कर बारापाल में धर्मशाला का कमरा मिले तो ले लेवें व उसकी मरम्मत के लिए मैं मारवाड़ से रकम भिजवा दूंगा। यह बात श्रीमान् सुन्दरलालजी सिंगटवाड़िया तथा श्रीमान् भंवरलालजी बाफना के ध्यान में आई व उन्होंने लिखापढ़ी करके वह कमरा श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ के नाम सरपंच से लिया। थोड़ी जमीन बरामदे के लिए पंचायत से खरीदकर उसकी मरम्मत करवाई व बरामदा बनाया गया। आपश्री ने मारवाड़ से भिन्न-भिन्न गांवों के लोगों से करीब रु. ५,०००) भिजवाए। आपकी प्रेरणा से साध्वीजी ने सांडेराव की श्राविकाओं द्वारा रु० ५०१) भिजवाए तथा श्रीमान् सुन्दरलालजी व श्रीमान् भंवरलालजी ने भी भिन्न-भिन्न लोगों से रु० ४,०००) मंडवाये।

यह विश्रामगृह लगभग रु० १०,०००) की लागत से पूर्ण हुआ। इसमें दो कमरे व वरामदा वना है। श्री सुन्दरलालजी सिगटवाड़िया व श्री भंवरलालजी वाफना को सामाजिक कार्यों में वड़ा उत्साह है।

९. सविना पार्श्वनाथ मंदिर का जीर्णोद्धार

मुनिराजजी ने उदयपुर चातुर्मास प्रवेश के पूर्व प्रथम वार सविना ग्राम में श्री पार्श्वनाथजी के मंदिर का दर्शन किया। तव देखा कि इसका जीर्णोद्धार करना जरूरी है। आपने अपने चातुर्मास में स्वप्नों की वोली की रकम मंदिर के जीर्णोद्धार में लगवाई। चातुर्मास के बाद जव आप मारवाड़ की ओर आये तव भी आपके मन में इस मंदिर के जीर्णोद्धार की तीव्र अभिलाषा थी। विजोवा में आपकी अध्यक्षता में उपधान तप की आराधना हुई। उस समय आपने उपधान तप के तपस्वियों को उपदेश देकर तथा भिन्न-भिन्न गांवों के लोगों को प्रवोध कर कुल रु० ३,०००) की राशि जीर्णोद्धारार्थ उदयपुर के वकील श्री चतुरसिंहजी गोरवाड़ा को भिजवाई। आपके उपदेश से सादड़ी उपधान तप समिति से रु० ५,०००), वैंगलोर श्री आदिनाथ जैन मंदिर से रु० ३,०००), मद्रास श्री चन्द्रप्रभ स्वामी जूना मंदिर से रु० १,०००) मंजूर हुए हैं व श्री चन्द्रप्रभ स्वामी नया मंदिर से रकम जीर्णोद्धार के लिए स्वीकृत होने वाली है। जीर्णोद्धार-कार्य शुरू है। यह मंदिर प्राचीन व दर्शनीय है। यह उदयपुर से २।। मील दूर सलुम्बर रोड पर है। यदि इसका जीर्णोद्धार नहीं करवाया जाता तो दीवारें व छत गिर जातीं। आचार्यश्री विकासचन्द्र सूरिजी के उपदेश से सादड़ी उपधान तप समिति ने रु० २५००) और मंजूर किये हैं। जीर्णोद्धार-कार्य श्रीमान् चतुरसिंहजी गोरवाड़ा व श्रीमान् नथमलजी बनोरिया द्वारा हो रहा है।

१०. परसाद-धर्मशाला का निर्माण-ऋषभ विहार

मुनिराजजी को जहां कहीं अभाव दिखाई देता है वहां जनहित की दृष्टि से आप कुछ न कुछ रचनात्मक कार्य करवाने का उद्‌बोधन करते हैं। जहां कहीं भी आप गये आपश्री ने जनहितकारी कार्य करवाए। कहा भी है—

'परोपकाराय सतां विभूतयः'

मुनिराजजी का उद्देश्य सर्वजनहिताय रहा है। आपको अपने कार्य की पूरी लगन रहती है। आपके उपदेश से उदयपुर केसरियाजी सड़क पर दो धर्मशालाएं बन गई हैं। आपने घाणेराव चातुर्मास कर परसाद में धर्मशाला बनाने हेतु उपदेश दिया। घाणेराव श्री संघ से करीब रु० ५,०००) इसके लिए एकत्र हुए तथा सादड़ी, बाली आदि के निवासियों ने भी सहायता की। आपके सदुपदेश से घाणेराव के श्री आर. टी. शाह, श्री हीरालालजी खिचिया तथा सांड़ेराव निवासी श्री पुखराजजी हेमाजी कामदार ने इसके लिए भिन्न-भिन्न स्थानों से रुपये मंड़वाये हैं। इस कार्य में लगभग रु० १२,०००) लगेंगे। यह कार्य श्रीमान् सुन्दरलालजी सिंगटवाड़िया, श्रीमान् गणपतसिंहजी कोठारी व श्रीमान् भंवरलालजी बाफना उत्साह व लगन से कर रहे हैं। श्रीमान् कोठारीजी ने इसके लिए जमीन खरीद कर दी है।

इस तरह मुनिराजजी जहां भी जाते हैं वहां के अभावों को दूर करने के लिये कार्यकर्त्ताओं को उपदेश देकर सत्प्रेरणा देते हैं।

द्वितीय खण्ड
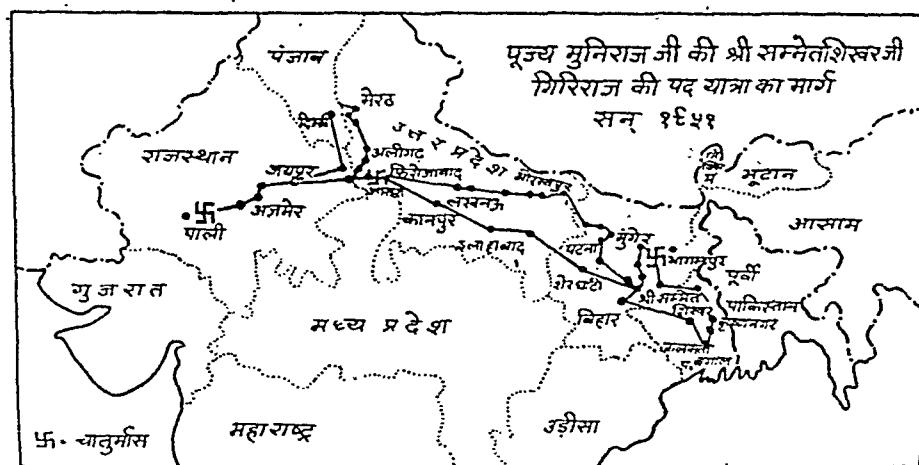
श्री सम्मेतशिखरजी की यात्रा का मार्गसूचक नक्शा

गुरुदेव के यात्रा-संस्मरण

मुनिराजजी ने गिरिराज सम्मेत शिखरजी तीर्थ की पैदल यात्रा की थी। उन्होंने अपनी यात्रा के संस्मरणों को कथात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। संस्मरणों की शैली रोचक है तथा उनमें कथा की रमणीयता है। प्रत्येक संस्मरणात्मक कथा में वर्णन की सुन्दरता झलकती है। प्रत्येक कथा कुछ न कुछ उपदेश देती है। प्रत्येक कथा मणि के समान सुन्दर है। जैसे मणि की कान्ति नयनों को अपनी ओर खींचती है वैसे ही प्रत्येक कथामणि मन को मुग्ध करती है। कुल मिलाकर ग्यारह कथामणियों की यह मणि-मंजूषा सहृदय एवं श्रद्धालु पाठकों के लिए प्रस्तुत है। इस यात्राकथा को पढ़कर गिरिराज सम्मेत शिखरजी तीर्थ के दर्शन की भावना जागृत हो जाती है।

कथामणि १

कथनी और करनी में अन्तर

मैंने और मुनिराज रामविजय ने पाली से विहार किया श्री सम्मेत शिखरजी की यात्रा के लिए। हम एक गाँव में पहुँचे। वहाँ पर एक धनाढ्य भक्त अपनी कन्या के विवाह के उपलक्ष्य में अठाई महोत्सव कर रहे थे। उन्होंने काफी दूर से भजन-मंडलियाँ बुलाई थीं। हम ठीक महोत्सव के प्रारम्भ में पहुंच गये थे। वहाँ पर श्री संघ ने बड़ी आवभगत बताई। भक्त ने उत्सव में ठहरने के लिए हमसे विशेष आग्रह किया। मैंने उनसे कहा कि हमें बहुत दूर जाना है। अतः रुक नहीं सकते। वे कहने लगे कि आप जाओगे कैसे ? हम उपाश्रय के द्वार पर लेट जाएंगे। आप हमारी छाती पर पैर रख कर चले जाइये। मैंने उनका आग्रह देखकर कहा कि मैं ठहर जाऊंगा लेकिन एक शर्त है — वह यह कि आप शादी में जितना खर्च कर रहे हो उसका एक शतांश गरीब भाइयों की भक्ति में भी व्यय करें। भक्तजी को यह बात नहीं जंची और हमने प्रातःकाल ब्यावर की ओर विहार किया। उपाश्रय के द्वार पर सोने वाला कोई भी भक्त

नजर नहीं आया। मुझे नहीं मालूम कि साधुओं का व्याख्यान सुनकर भी हमारा दिल पत्थर के समान क्यों रहा ?

समझाते उम्र बीती बुते खुदसर को समझाते।
पिघल कर मोम हो जाता अगर पत्थर को समझाते॥

टिप्पणी – साधर्मी भाई की भक्ति : अवहेलना क्यों ?

इस प्रसंग को पढ़कर मन में कितने ही विचार उठते हैं। मुनिराजजी ने गरीब साधर्मी भाइयों की सेवा में सेठ साहूकारों को धन खर्च करने के लिये जो सदुपदेश दिया वह मननीय है। धनिकगण व्याह आदि उत्सवों में बहुत रुपया खर्च करते हैं–शान-शौकत और वैभव-प्रदर्शन में उनका अपार उत्साह रहता है। दुःख की बात है कि अपने ही जरूरतमंद बंधुओं के लिये समाज के लक्ष्मीपुत्र आंख उठाकर भी नहीं देखते। साधर्मी भाइयों की भक्ति की महिमा शास्त्रों में बखानी गई है। इन पंक्तियों को पढ़िये तो पता चलेगा कि शास्त्र-वचनों से हम लोग कितने अनभिज्ञ हैं –

साधर्मी वात्सल्य –

सर्वैः सर्वे मिथः सर्व-सम्बन्धा लब्धपूर्विणः।
सार्धमिकादिसम्बन्ध – लब्धारस्तु मिताः क्वचित्॥१॥
तेषां संगमो हि महते पुण्याय, किं पुनस्तदनुरूपा सेवा ? यतः :–
एगत्थ सव्वधम्मा, साहम्मिअवच्छलं तु एगत्थ।
बुद्धितुलाए तुलिया, दोवि अतुल्लाइं भणिआइं॥"*

अष्टाह्निका–(प्रथम व्याख्यानम्)

साधर्मी बन्धु की भक्ति करना महान् धर्म है।

इस समय हमारे आगेवान समाज के धनवानों का ध्यान इस ओर आकर्षित क्यों नहीं करते ? परोक्ष रूप में श्रावक-श्राविका क्षेत्रों का महत्त्व उपर्युक्त पंक्तियों में बतलाया गया है। इन क्षेत्रों को पोषण करने की नितान्त आवश्यकता है। समाज की ओर दृष्टिपात कीजिए तो ज्ञात होगा कि कितने ही साधर्मी बन्धु धनाभाव के कारण पेट भर खाना भी नहीं खाते हैं–कितने ही बन्धुवर अपने बच्चों को शिक्षा भी नहीं दे पाते और कितने ही प्रखर बुद्धिवाले

* छाया – एकत्र सर्व्वधर्म्माः, साधर्म्मिकवत्सलं तु एकत्र।
बुद्धितुलया तुलितौ, द्वावपि तुल्यौ भणितौ॥१॥

बालक बिना धन और आर्थिक साधनों के शिक्षित बन ही नहीं पाते। जब साधर्मी भाई-बहिनों की यह दशा है तो हमारे मार्गदर्शक सही मार्गदर्शन क्यों नहीं कर रहे हैं? वे लकीर के फकीर बन कर समाज की गाड़ी को पीछे धकेल रहे हैं मुझे ऐसा लगता है। उनकी वाणी में प्रभाव क्यों नहीं है, उनके शब्दों में ओज क्यों नहीं है – वे वास्तविक स्थिति को क्यों नहीं बता रहे हैं? फिजूलखर्ची हो रही है – लाखों रुपया खर्च हो रहा है–किन्तु सब भोजन में और मधुर-मधुर पकवानों में। क्या धर्म इन मीठे मोदकों में ही रह गया है? मध्यम वर्ग की पीड़ा को समझने वाले जब गुरुदेवों का अभाव-सा लग रहा है। कब वह समय आएगा जब इस अभावग्रस्त क्षेत्र (श्रावक और श्राविका) के उत्थान के लिये हमारे मार्गदर्शक प्रेरणा देंगे। इस समय तो मुझे अंधकार ही अंधकार दिखाई दे रहा है। बहुत कम ऐसे हैं जो गुरुदेव वल्लभ सूरिजी की तरह साधर्मी भाइयों की सेवा के लिये क्रांतिकारी उपदेश देते हैं।

मुनिराज वल्लभदत्तजी ने निर्धन साधर्मी भाइयों की सेवा पर जो महत्व दिया है–वह इस घटना से स्पष्ट है।

साधर्मी बन्धुओं की सच्ची भक्ति मैं तभी मानूंगा जबकि धन को मिष्ठान्नों में खर्च न करके विद्यादान, छात्रवृत्तियां, उद्योग-धन्धों आदि में खर्च किया जायगा।

व्यापक अर्थ–साधर्मी वात्सल्य का व्यापक अर्थ है–अपने धर्म-बन्धु के प्रति स्नेह करना।

अपना धर्म है–आत्मधर्म। जो आत्मार्थी है – वह अपना बन्धु। इस दृष्टिकोण से सभी पीड़ित भाई-बहिन इस व्याख्या में आ जाते हैं। उनकी सेवा करना धर्म है। इसमें मानवता की विशालता भरी हुई है। फिर ऐसा आत्मार्थी, प्राणिमात्र के प्रति दया, स्नेह एवं सहानुभूति क्यों न रखेगा? ऐसा व्यापक दृष्टिकोण जो अपनाता है वही सज्जन पुरुष है। यह दृष्टिकोण है –

'आत्मवत् सर्वभूतेषु'

— सेवक

कथामणि २

बिना झोली का फकीर

व्यावर से हम जयपुर की तरफ चले। जयपुर में श्री सोहन लालजी गोलेछा की माता वड़ी सरल स्वभाव की थीं। वे साधु-संतों की वड़ी भक्ति करती थीं। पीहर में उनके कुटुम्वी तपागच्छीय थे और सासरे में खरतर गच्छीय। वे अक्सर कहा करतीं कि मुझे तो पीहर और सासरे–दोनों का धर्म निभाना है। न वाप के गच्छ को छोड़ सकती हूँ न ससुरजी के। ये दोनों गच्छ तो मेरी आंखों के समान हैं। क्या व्यक्ति अपनी दोनों आंखों में से किसी एक आंख को फोड़ना चाहेगा? नहीं-कदापि नहीं। सोहनलालजी की माताजी ने मुझसे आग्रह किया कि मेरी झोपड़ी को पावन करके आप भरतपुर की तरफ पधारियेगा। हमने पौष दशमी का एकासना किया और सेठ सोहन लालजी गोलेछा की कोठी में जयपुर संघ के भाई-वहिनों के साथ प्रवेश किया। सेठजी की माता ने वड़ा वात्सल्य किया। वे खुशी से फूली नहीं समाती थीं।

दूसरे दिन हमने भरतपुर की ओर विहार कर ११ मील की दूरी पर स्थित एक टूटी-फूटी धर्मशाला में डेरा डाला। वहां से गांव एक मील दूर होगा। थोड़ी देर के वाद सेठजी की माता अपने वेटों की वहुओं और वाल-गोपालों को लेकर जयपुर से मोटर द्वारा आईं। हमें देखकर कहने लगीं, "आज जंगल में मंगल होगा। गुरु महाराज की सेवा में हम सव आज यहां ही रहेंगे और यहां ही दिवसीय भोजन होगा और शामको जयपुर चले जाएंगे। महाराज साहव लाभ दीजियेगा। सव जोगवाई तैयार है।" हमने उनकी भक्ति देखकर लाभ दिया। कुछ देर तक धर्मचर्चा होती रही। सर्दी का दिन जल्दी ही समाप्त हो जाता है अतः चार वजे संध्या को सेठानीजी जयपुर जाने की तैयारी करने लगीं। वहां एक काला कुत्ता न मालूम कहां से आ गया था। सेठानीजी की नजर उस पर पड़ी। सेठानीजी ने नौकर को वुलाकर कहा कि जा डिव्वा खोल और वची हुई भोजन सामग्री कुत्ते को खिला दे। यह विना झोली का फकीर है। नौकर ने उसके सामने भोजन रखा और कुत्ते ने भरपेट खाया और वहीं पसर गया। सेठानीजी चली गईं। सूर्यास्त हो गया। हमने प्रतिक्रमण की तैयारी

की। उसी समय कुत्ते की जोर जोर से भौंकने की आवाज आई। दो-चार आदमी जिनके हाथों में लाठियां थीं, धर्मशाला में घुसना चाहते थे। लेकिन कुत्ता उन्हें प्राणपण से बाहर ही रहने के लिए मजबूर कर रहा था। अब हमारी समझ में आया कि संकट पास में ही खड़ा है। हमें सांसियों ने घेर लिया है। ये सांसी जरायम पेशा कौम के होते हैं। आदमियों को मार कर खाने की बात भी साँसियों के लिए कही जाती है। हमने सोचा कि अब डर से काम नहीं चलेगा। मैंने और चुन्नीलालजी पुरोहित ने, जो हमारी सेवा में साथ ही पैदल यात्रा कर रहा था, ललकार कर उन लोगों से कहा– आप कौन लोग हैं ? कहां से आये हो ? क्या चाहते हो ? उनमें से एक की आवाज आई। बीड़ी माचिस हो तो दे दो। हमने कहा– 'यहां साधुलोग ठहरे हैं –बीड़ी माचिस नहीं रखते।' अब हमारी समझ में आया कि चोर लोग लूटने से पहिले शकुन साधने के लिए अक्सर ये चीजें मुसाफिरों से मांगा करते हैं। हमने अपनी आवाज ऊंची की और जोर से ललकारते हुए कहा, – 'तुम लोग अपना रास्ता नापो। यहां साधु लोग ठहरे हैं। बीड़ी माचिस कुछ नहीं रखते।' लेकिन चोर थे जो टलने का नाम नहीं लेते थे और अन्दर घुसना चाहते थे। कुत्ते ने अपनी स्वामिभक्ति प्रकट करनी शुरू की। वह चोरों से अकेला ही जूझ कर उन्हें खदेड़ना चाहता था। हम भी चौकन्ने होकर भगवान पार्श्वनाथ के गीत गाते रहे। सारी रात यही माजरा चलता रहा। न तो चोर टलना चाहते थे और न हम लोग सोना चाहते थे। चोरों ने एक-दो बार धर्मशाला में प्रविष्ट होने का पूरा प्रयत्न किया किन्तु हमारी सजगता के कारण वे कामयाब नहीं हुए। प्रातः उषा का शुभागमन हुआ। चोर अपने घर की ओर चले और हमने प्रतिक्रमण करना प्रारम्भ किया –

'सुने री मैंने निर्बल के बल राम'

कथामणि ३

गिरिराज के दर्शन

आनन्द-यज्ञ में जग के, रे, आमंत्रण,
रे धन्य, धन्य, रे धन्य हुआ यह जीवन।
इन नयनों ने छवि पान किया मन-माना
कानों ने स्वर-संगीत सुना पहिचाना।

— गीताञ्जली : विश्वकवि रवीन्द्र

हमने वनारस से सम्मेत शिखरजी की ओर विहार किया। रास्ते में दनुआ धनुआ का एक जंगल मिला। यह जंगल काफी दूर तक फैला हुआ है। उत्तराध्ययन सूत्र की टीका पढ़ते हुए मैंने इस जंगल की वात पढ़ी थी। प्राचीन काल में जैन मुनियों ने इसी दनुआ धनुआ के जंगल में उपसर्गों पर विजय पाई थी। आज दनुआ धनुआ का जंगल मेरे सामने था। शेर घाटी के आगे ही यह जंगल शुरू होता है। चीता, शेर, भेड़िया आदि जंगली जानवर इस जंगल में रहते हैं। 'बंगाल टाइगर' का निवास भी यहाँ सुना जाता है। ग्राण्ड ट्रंक रोड इस जंगल से बल खाती हुई आगे चली जा रही थी। हां, तो चलते-चलते सूर्यास्त हो गया। साथियों की यह राय हुई कि इस जंगल में किसी पेड़ के नीचे आसन लगा दिया जाय। एक भील ने, जो अपने गांव की ओर जल्दी-जल्दी जा रहा था, कहा कि आपको एक फर्लांग के ऊपर सड़क के किनारे एक कच्चा मकान-जो कभी स्कूल था — मिलेगा। वहां ठहर जाना। हम जल्दी-जल्दी कदम वढ़ाकर उस ओर चले। वह मकान क्या था? पुराना ढूंढा था। जहाँ-तहाँ उसमें उड़ती हुई सर्प की कांचली उनकी उपस्थिति का आभास दे रही थी। हमने वहीं डेरा जमाया। काली रात ने सारे जंगल को अपनी वाहों में समेट लिया। चारों ओर अंधकार ही अंधकार छा गया। जंगली जानवरों की डरावनी आवाजें आने लगीं। शास्त्रों में पढ़ा था कि भगवान् महावीर देव ने भय-भैरव को जीत लिया था। हमें उस दिन मालूम हुआ कि भय-भैरव क्या चीज़ है? सारी रात नींद नहीं आई। प्रातः कृत्य करके हमने आगे विहार किया। अब हमें यहाँ सम्मेत शिखरजी की ऊँची चोटी साफ दिखाई दे रही थी। सम्मेत शिखरजी गिरिराज की एक झलक ने रात्रि की

सारी व्यथा को दूर कर दिया। मेरे मन ने कहा—अरे तुम बड़े भाग्यशाली हो। हमारे बड़े-बड़े आचार्य जिसके दर्शन के लिए तरसते रह गये—वह तुझे सहज में ही प्राप्त हो गया। आज तेरे नेत्र पवित्र हो गये और तेरा जन्म सफल हो गया। पठान रसखान को भी मुझ जैसी अनुभूति ब्रज प्रदेश को देखकर हुई थी। तभी तो उसने कहा है—

मानुस हो तो वही रसखानि, रहों नित गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पसु हो तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मंझारन।
पाहन हो तो वही गिरि को, जो धरो सिर छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हो तो बसेरो करौं, कालंदी कूल कदम्ब की डारन।

कथामणि ४

काश! आज भारत में कोई मनु होता

सम्मेत शिखरजी की यात्रा कर हम जमुई होकर काकन्दी आए। काकन्दी कल्याणक भूमि में है। भगवान् सुविधिनाथजी के चार कल्याणक यहीं हुए हैं। वैसे हमारे मन से असली काकन्दी गोरखपुर के पास खोखुन्दो है जहाँ प्राचीन टीलों और मूर्तियों के अवशेष आज भी मौजूद हैं। हां, तो हमारा काकन्दी में दो दिन ठहराना हुआ। ग्राम की जनता ने हमसे उपदेश सुनाने की विनती की। हमने उन्हें उपदेश सुनाया। रात्रि में लोगों का बड़ा ठट्ठ जमता था क्योंकि चुन्नीलालजी पुरोहित ढोलक पर राजस्थानी भाषा में संतों की वाणी सुनाता। हमारे साथ दो भक्त भी पद-यात्रा कर रहे थे। उनमें खुडाला निवासी लालचंदजी पुनमिया और पाली के मंदिर का पुजारी चुन्नीलाल पुरोहित भी था। ये बड़े गुरुभक्त थे। ये स्वयंपाकी भी थे और जब तक हम गोचरी नहीं लेते तब तक स्वयं नहीं खाते। श्री लालचंदजी ने सोचा कि काकन्दी गांव के लोग बड़े भक्त हैं। घंटों तक 'हरे राम', 'हरे राम', 'हरे कृष्ण' 'हरे कृष्ण' का संकीर्तन करते हैं। इन्हीं लोगों से मूल्य देकर आटा-दाल खरीद लिया जाय। देहाती लोग छल-छद्म से रहित होते हैं। यहां चीजें शुद्ध मिलेंगी। उन्होंने चार-पांच सेर आटा और थोड़ी-सी तुअर की दाल खरीदी। दूसरे दिन हम विहार करके समरिया

महादेव पहुँचे। वहाँ एक तालाव में शिव मंदिर दर्शनीय था। एक-दो वुद्ध मूर्ति के अंग-भंग इधर-उधर पड़े नजर आए। अव हमने समरिया महादेव की धर्मशाला में आसन जमाया। थोड़ी देर के वाद भक्त लोगों ने कहा–'साहेव गोचरी का लाभ दीजिएगा।' हमने गोचरी का लाभ देकर आहार करना शुरू किया। प्रथम ग्रास लेते ही मालूम पड़ा कि रोटियों के आटे में आधा वालू रेत मिला हुआ है। इससे खाना असंभव था। इसी से सारा आहार परठना पड़ा। इधर भक्तों ने जव भोजन शुरू किया तो उनका वुरा हाल था। वे भागते हुए हमारे पास आये और कहने लगे कि आटे में मिलावट की है–आधा वालू रेत मिला दिया है। आप कृपा कर गोचरी न करें। यह मिलावट का पाप शहरों से लेकर गांवों तक फैला हुआ है। जिन देहातियों को हम भोलाभाला समझते हैं वे कपट-विद्या में शहर वालों के कान काटते हैं। शहरों से डालडा का डिव्वा खरीद कर उसे दूध में मिला कर शुद्ध घी के नाम से वेचते हैं। वे एक तरफ मंदिर में जाकर हरि कथा सुनते हैं–कीर्त्तन करते हैं और दूसरी ओर मौका मिलने पर खाद्य पदार्थों में मिलावट कर जनता के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करते हैं। धर्म तो सिर्फ मंदिर तक ही सीमित रहा है। काश ! आज भारत में कोई मनु होता जो कानून तोड़ने वालों को सख्त सजा देता और राजनियम का पालन करवाता।

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
भयाद् भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलंति च॥

मनुस्मृति–अध्याय ७ : १५

अर्थात् उसके भय से स्थावर तथा जंगम सभी जीव भोग के लिए समर्थ होते हैं तथा वे अपने धर्म से विचलित नहीं होते हैं।

कथामणि ५

वंगाली डाक्टर या जासूस

समरिया महादेवजी की एक कोठरी में एक वंगाली डाक्टर वहुत दिनों से रहता था। उसने कितने ही जैन महात्माओं को वहां आतेजाते और विश्राम करते देखा था। वह अक्सर अपने मरीजों के सामने जैन साधुओं का मजाक उड़ाया करता था। वह कहा

करता कि जैन साधुओं की जिन्दगी बड़ी मौज-मस्ती की होती है। ये साधु मालदार सेठों के गुरु होते हैं। भोजन में माल-मलीदा खाते हैं, अच्छे-अच्छे कपड़े पहिनते हैं—मेहनत-मुसक्का से दूर रहते हैं। वह डाक्टर और भी कितनी अंट-शंट बातें किया करता था। वह जैन साधुओं को देख कर जासूस की तरह उनके पीछे पड़ जाता। ये क्या खाते हैं ? क्या पीते हैं ? वह सब छिप-छिप कर देखा करता। चैत सुदी सातम को हमने समरिया महादेव की धर्मशाला में अपना आसन जमाया। हमारे सब साथियों ने तय किया कि आयंबिल की ओली की आराधना की जाय। ओली का भोजन तो विगई रहित (रूखा-सूखा) होता है। डाक्टर ने दो-तीन बार चक्कर लगाकर पूछताछ की कि भोजन रूखा-सूखा क्यों बन रहा है ? चुन्नीलाल पुरोहित ने कहा कि हम रूखा-सूखा खाते हैं इसीलिए रूखा-सूखा बन रहा है। हमें यहां के घी से चिढ़ है। न जाने यहां के लोग घी में कुछ मिला दें तो—परदेश का मामला ठहरा—बीमार पड़ने पर आप जैसे डाक्टरों की फीस कहां से देंगे ? डाक्टर ने देखा कि इसके पास से तो कुछ पल्ले पड़ने वाला नहीं है—चलो महात्माजी से ही पूछ लें कि रूखा-सूखा भोजन क्यों करते हैं ?

डाक्टर—जैन साधुओं को मैंने बढ़िया भोजन लेते देखा है। आप भी जैन साधु हैं—यह रूखा-सूखा भोजन आपने क्यों लिया ? क्या कोई सेठ-साहूकार आपका भक्त नहीं है जो घी की व्यवस्था कर सके।

मैं—हैं क्यों नहीं ? बड़े-बड़े साहूकार हमारे भक्त हैं और हजारों गरीब आदमी भी हमारे भक्त हैं। रही रूखे-सूखे भोजन की बात—इस समय हमारे धर्म में ओली की आराधना चल रही है। गरीब-अमीर जो कोई इस व्रत को करता है—वह रूखा-सूखा भोजन दिन में ही एक बार खाकर और गरम पानी पीकर इस व्रत का पालन करता है। यह व्रत महा-मंगलकारी है। इसके करने वालों के सब दुःख-दर्द दूर हो जाते हैं।

डाक्टर—तब आप घी, दूध, पूरी हलवा खाते हैं या नहीं ?

मैं—क्यों नहीं खाएंगे ? यदि भक्त लोग लड्डू-पूड़ी देंगे तो वह भी खाएंगें। सूखे भुने हुए चने देंगे तो वो भी लेंगे। जिस दिन हमें

उपवास करना होगा उस दिन कुछ भी न खाएंगे। यह हमारी मर्जी पर है। जो हमारे शरीर के योग्य और शास्त्रसम्मत होगा वह आहार-पानी ग्रहण करेंगे और इसके विपरीत होगा तो नहीं। हमारे लिए तो लड्डू और चने दोनों वरावर हैं।

डाक्टर – अभी तक तो मेरे मन में जैन साधुओं के आहार के वारे में भ्रम था। आपश्री ने मेरी भ्रान्ति दूर कर दी है। धन्यवाद।

मैं – डाक्टर साहव, आप साधु-संगत करते रहिएगा। किसी-न-किसी दिन प्रभु कृपा से आपको सच्चे संतों के दर्शन होंगे। साधु और भगवान एक ही हैं।

कबीरजी ने कहा है –

सन्त मिले साहव मिले अन्तर नहीं रही रेख।
मनसा वाचा कर्मणा साधु साहव एक॥
निरवैरी निष्कामता साईं सेती हेत।
विषयों सु न्यारा रहे साधन का मत एक॥

कथामणि ६

मुसलमान भाई की भक्ति

भागलपुर चौमासा करके हमने बंगाल की ओर विहार किया। यह सन् ५१ की वात है। सन्थाल परगना हमारे विहार के बीच में आया जिसमें आदिवासी सन्थाल जाति निवास करती है। यह जाति पहले हिन्दू थी लेकिन हिन्दू धर्म के महारथियों ने इनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। ईसाई पादरियों ने अपने धर्म प्रचार से लाखों सन्थालों को ईसाई धर्म में दीक्षित कर दिया। ईसाई मिशनरियों को विदेशों से वड़ी सहायता मिलती है। उन्हें करोड़ों रुपया इस काम में लिए ईसाई समाज देता है। ईसाई वनने के वाद सन्थाल हिन्दू धर्म का और श्री राम-कृष्ण-वुद्ध का शत्रु वन जाता है। गंगा जमुना अव उनके लिए पानी का नाला मात्र रह जाती हैं। हिन्दू पर्व त्यौहार उनके लिए कोई मानी नहीं रखते। ईसाई लोग भोलेभाले निर्धन सन्थालों को प्रलोभन देकर धर्म परिवर्तन कराते हैं। अगर यही हाल रहा तो एक दिन ये लोग भारत संघ के लिए भय रूप रहेंगे। इनकी

झारखंड की मांग के पीछे स्वतंत्र ईसाई राज्य की भावना छिपी हुई है। हम दुमका नामक स्थान पर पहुँचे। यह स्थान वड़ा रमणीय पहाड़ी स्थल है। हमने अजीमगंज मुर्शिदावाद के जैन मंदिरों की यात्रा की। यह स्थान विगत के वैभवों को कहने के लिए अभी तक टिका हुआ है। अजीमगंज के ओसवाल भूपालों के वारे में वहुत पढ़ सुन रखा था। जगत् सेठ पैदा करने वाला यही स्थल है। यहां आज भी रईस तवियत के ओसवाल भूपाल आपको मिल जाएँगे। कितने श्रेष्ठ – कितने मधुरभाषी और धर्म के प्रति आस्था रखने वाले सज्जन हमें मुर्शिदावाद में ही मिले। मैंने मुर्शिदावाद की वहिनों में भी जैसी धर्म के प्रति अटल श्रद्धा देखी वैसी अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं हुई। श्रद्धा की महिमा तो शास्त्रों ने भी गाई है। जैसे कि —

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जन्तुणों।
माणुसत्तं सुई सद्धा संजमंमि य वीरियं॥

उत्तराध्ययन सूत्र: अध्ययन ४–१

अर्थात् – प्राणियों को ये चार अंग कितने दुर्लभ हैं। मनुष्यत्व, धर्म श्रवण, श्रद्धा और संयम में शक्ति।

मानव जीवन के ये चार चिंतामणि रत्न हैं।

हमने अजीम गंज से राणाघाट की ओर प्रस्थान किया। उस समय वंगाल में कालिया वोदिया मठ का प्रकरण चल रहा था। सरकार के कथनानुसार कालिया वोदिया मठ के वावाओं ने सरकारी कर्मचारियों पर सशक्त आक्रमण कर उन्हें सख्त घायल कर दिया था। सरकार ने इस प्रकरण को लम्बा-चौड़ा वनाकर रेडियो तथा समाचारपत्रों में छपवाया जिससे समस्त वंगाली जनता साधु-फकीर-फुकराओं के विरुद्ध हो गई। जनता जहां भी किसी दाढ़ी वाले वावा को देखती – वहीं उसे पीटने लगती। इस सिलसिले में कितने ही वेगुनाह साधु जनता के द्वारा सताए गए जिनकी लोमहर्षक कहानियाँ सुनने को मिलतीं। हमें देख कर भी कितने ही भोलेभाले वंगाली यह समझते कि हम भी कालिया वोदिया मठ के सदस्य होंगे। हमें ये लोग विश्राम के लिए मकान देने से साफ इन्कार कर देते और ऊपर से वंगाली भाषा में गालियों की वौछार करते। आखिर हमें कभी-कभी पेड़ों के नीचे वैठ कर रात वितानी पड़ती। एक दिन हम एक गांव

में पहुँचे। रविवार का दिन था; स्कूलें बन्द थीं। हमने एक प्राइमरी स्कूल के बरामदे में अपना आसन जमाया। श्री मांगीलालजी शर्मा ने भोजन बनाने की तैयारी की ही थी कि चार पांच बंगाली नौजवान टूटीफूटी हिंदी में मांगीलाल को कहने लगे, — "तुम भागो, हमेरा खेला (ताश) होगा। तुम स्कूल में काहे उतरा, नहीं जाता, मारो साल्ले को," और उस पर टूट पड़े। मैं लघुशंका हेतु बाहर गया था। वापिस आकर देखा कि मांगीलाल को लोग हाथ पकड़ कर बाहर खींच रहे हैं और मुक्कों से मार रहे हैं। मैंने उक्त बंगालियों से कहा, — "तुम इस भले आदमी को क्यों मार रहे हो, उसे छोड़ दो। जो कुछ कहना है मुझसे कहो।" बंगालियों ने मांगीलाल को छोड़ दिया और मुझसे बोले — तुम कालिया बौदिया का बाबा होता। मैंने कहा — हम नहीं जानता — कालिया बोदिया कौन होता। हम जैन साधु है। कोलकोत्ता जाना मौंगता है। वे कहने लगे, हम खेला खेलेगा, तुम यहां से भागो। मैंने कहा — विश्वकवि रवीन्द्र के प्रदेश में ऐसे असभ्य लोग भी होंगे — इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी। आप लोगों की अभद्रता ने तो आज गजब ही ढा दिया है। इस कांड को एक मुसलमान भाई दूर से देख रहा था। वह मेरे पास आया और धीरे से कहने लगा, — "बाबा मेरे साथ चलो। मेरा मकान तैयार है, बिल्कुल एकान्त में है और वह खाली पड़ा है। आपकी इच्छा हो उतने दिन रहना।" अल्लाह की राह में चलने वालों को अल्लाह राह बताता है। हम मियांजी के साथ चल दिए। मकान अच्छा ही था —

> **कांटा किसी को मत लगा गो मिस्ले गुल फूला है तू।**
> **वह तेरे हक में तीर है किस बात पर भूला है तू॥** — महाकवि नजीर

कथामणि ७

वाह रे! गांगुली बाबू

बंगाल के विहार में सबसे बड़ा कष्ट यह था कि लोग साधु की सूरत से दूर भागते थे। मकान मांगने पर देने से साफ इन्कार कर देते थे। राणघाट में हम एक घंटे तक आश्रय की तलाश में घूमते रहे। अन्त में एक बिहारी भैया ने कहा कि गांगुली बाबू की दुकान पर जाओ, वे मकान दे देंगे। हम गांगुली बाबू की दुकान पर गए

तो मालूम हुआ कि दुकान बंद है। बाबू भोजन करने गए हैं। हम दुकान पर बैठ गए। इतने में ही दो-चार मछियारे मच्छियों का टोकरा लेकर हमारे पास ही बैठ गए। मछलियों की दुर्गन्ध से वायु दूषित हो रही थी। मुझे तो कै जैसी होने लगी। हमने उन मछियारों से कहा कि भाई जरा दूर जाकर बैठो, कुछ साधु-सन्तों का खयाल तो रखो। वे उठकर दूर चले गए। इतने में गांगुली बाबू आ गए। हमें देखकर उन्होंने पैरों में पड़कर नमस्कार किया। गांगुली बाबू बीस-पच्चीस वर्ष के नौजवान रहे होंगे। उनकी बड़ी-बड़ी आंखें, चौड़ा ललाट, खुली लांघ वाली धोती—उनके बंगालीपन को प्रकट कर रही थीं। उन्होंने पूछा, बाबा क्या चाहता है? हमने कहा, एक रात ठहरने के लिए आश्रय। उन्होंने कहा कि चलो हमारी बाड़ी में। भोजन तो हमारा ही पाओगे। लो यह दस रुपया और इच्छा-भोजन करो। मैंने कहा—हम रुपया तो नहीं छूता। उसने कहा तो हमारी बाड़ी भी आपको नहीं मिलेगी। हमारा रुपया लो, भोजन करो और बाड़ी में ठहरो। उस समय मांगीलाल शर्मा ने बंगाली बाबू से कहा—"ये महात्मा तो रुपया पैसा रखते नहीं, मधुकरी भिक्षा लेते हैं, आप मुझे रुपया दीजिये। आप भी भोजन कीजिये।" गांगुली बाबू बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि महात्माजी परमहंस वृत्ति के मालूम पड़ते हैं। हम इनकी संगत करेगा। आप मेरे नौकरों के साथ बाड़ी जाओ, हम अभी आता है। गांगुली बाबू ठीक समय पर आए, भोजन किया और एकान्त में योगशास्त्र पर हमसे चर्चा करने लगे। हमने योग के बारे में काफी जानकारी दी। अब गांगुली बाबू अपनी साधना के बारे में मुझे बताने लगे। वे तेजोलेश्या* के जानकार थे।

---

*जैन शास्त्र में लेश्या का वर्णन आया है। उसके दो भेद हैं—तेज और शीत। छः महीने तक बेले-बेले (दो उपवास) की तपस्या और उड़द के बाकुलों (पकाए हुए दाने) का पारणा करने से तेजोलेश्या प्राप्त होती है। तेजोलेश्या में यह शक्ति है कि इसकी विकराल अग्नि-लपटें जम्बूद्वीप को भस्म कर सकती हैं—मानों यह विध्वंसक हाइड्रोजन बम ही हो। शीतलेश्या इसके विपरीत होती है। यह तेजोलेश्या को ठंडा कर देती है। उक्त बंगाली बाबू को इतनी बड़ी तेजोलेश्या तो प्राप्त नहीं थी किन्तु वह सूर्य के सामने कम्बल ओढ़कर बैठ जाता और ४०० वाट की विद्युत का प्रवाह शुरू हो जाता लेकिन कम्बल

उन्होंने तेजोलेश्या सिद्ध भी की थी। वे मुझे यह विद्या देना चाहते थे। किन्तु मेरे पास छः महीने का समय उस साधना के लिये नहीं था। मैं सिर्फ तीर्थयात्रा करने के लिए गया था, किसी की वाड़ी में छः महीने बैठकर तेजोलेश्या सीखने नहीं।

कथामरिण ८

विष और अमृत

हमने पौष दशमी के दिन कलकत्ते में प्रवेश किया। एक बीकानेर का श्रावक, जिसे राजा कोचर कहते हैं, हमें जैन दादावाड़ी में मिला। उसने हमें तुलापट्टी का रास्ता दिखाया और उपाश्रय में ले गया। लोगों ने हमारे वारे में गलत अफवाह फैला दी थी कि हम एक आचार्यश्री के विरोध में कलकत्ते आरहे हैं और उनके मुकावले में चौमासा करना चाहते हैं। किन्तु हमारे मन में यह वात नहीं थी। हम तो सिर्फ जैन मंदिरों के दर्शन करने गये थे। वहाँ मेरे तीन-चार जाहिर व्याख्यान भी हुए जिनकी जैन जनता ने खूव सराहना की। मैं गच्छ कदाग्रह से सदा दूर रहा हूँ। वैसे मेरे दिल में तपागच्छ का ही राग है फिर भी अन्य गच्छ के आचार्यों के प्रति भी मेरा कम आदर नहीं है। कलकत्ते के मारवाड़ी समाज में संगठन की कमी है। वहाँ गच्छ कदाग्रह का भी काफी जोर है। लोग एक-दूसरे को नीचा दिखाने की काफी कोशिश करते हैं। इसके विपरीत गुजराती समाज संगठित हैं। वे एकजुट होकर शासन के काम करते हैं जिसमें उन्हें सफलता भी मिली है। जव हमने कलकत्ते से विहार किया तो हजारों आदमी लीलवा तक पैदल आए। वहाँ दो भाइयों ने पूजा पढ़ाई और सार्धमिक वात्सल्य भी किया। श्रीमान् नथमलजी रामपुरिया ने हमारी वहुत भक्ति की। मैं कभी-कभी सोचता था, कलकत्ते में प्रवेश

नहीं जलता था। वह अपने सामने दो-चार कच्ची ईंटें रख देता था और उनके ऊपर दृष्टि डालकर उन्हें क्षणमात्र में पका देता था। यह विद्या इसको किसी नेपाली महात्मा ने सिखाई थी। गुरु ने उसे यह भी हिदायत दी थी कि इस विद्या को किसी पात्र को देकर विवाह करना। यह वंगाली नौजवान एम० ए० पास था और पक्का शाकाहारी था।

करते समय सिर्फ एक आदमी आया और पहुँचाने के लिए हजारों। साधुओं के लिए तो विष और अमृत समान हैं।

> भागती फिरती थी दुनिया जब तलब करते थे हम,
> हमने जब नफरत करी तो वो बेकरार आने को है।
>
> –स्वामी रामतीर्थ

कथामणि ९

भाई, हम कालिया वोदिया नहीं हैं

हम लीलवा से विहार करके शक्तिनगर आए। डाक बंगले में ठहरने लगे तो चपरासी कहने लगा, "रात को साहब आएगा, तुम को देखेगा तो हमारी नौकरी चली जायगी। न बाबा, यहां से आगे जाओ। तुम कालिया वोदिया मठ का मालूम पड़ता है।" हमने चपरासी को समझाया, भाई हम कालिया वोदिया नहीं हैं, घबड़ाओ नहीं, शाम को चला जाएगा। चपरासी बोला, बाबा हम आपको ठहरने का स्थान बताता है, वो अमरीकन सिपाही के वास्ते जो मकान सरकार ने बनाया है न, वो अब खाली पड़ा है। चोर लोग उसका बारी दरवाजा उठा ले गया है। अब रात को वहां गुण्डा आता है। तुम वहां चले जाओ। मैंने कहा, हमको गुण्डा चोर का डर नहीं है। वहीं चला जायगा, तुम फिकर मत करो। बस थोड़ा सा भोजन और विश्राम कर लेने दो। शाम को हम उस टूटे-फूटे अमरीकन सेना के खाली क्वार्टरों में चले गए। एक क्वार्टर जो ठीक हालत में था, उसे साफ कर वहां ही डेरा जमाया। हम प्रतिक्रमण करके सो गए क्योंकि थके मांदे जो थे न। रात को १२ बजे अकस्मात् मेरी नींद टूट गई। पास के क्वार्टर में बड़ा शोरगुल मच रहा था। चीख-पुकार, मार-पीट, रोना-धोना, हंसना-गाना मानो विरुद्ध धर्मों का वहां सम्मेलन हो रहा हो। देशी ठर्रे की बदबू से सारे क्वार्टर भर गये थे। मेरा तो सांस लेना भी दूभर हो गया। हमारे सब साथी जाग गये किन्तु किसी की भी हिम्मत नहीं पड़ती थी कि पास वाले क्वार्टर में जाकर इस मामले को देखा जाय। अब उधर से समवेत स्वर में गाने की आवाज आई। गाना सरल बंगला भाषा में था जिसका भाव कुछ इस तरह का था–"हे मुहम्मद तू मेरी मां है,

चाहे वच्चा बुरा हो या भला। मां अपने वच्चे को असीम प्यार करती है। क्या तू हमको प्यार न करेगा? हे पैगम्वर, हम तेरे अज्ञानी वालक हैं। हम पर दया कर, हमें कुकर्मों से वचा।" मेरे ख्याल में आया कि ये जरूर मुसलमान गरीव मजदूर हैं जो ठर्रा पीकर गम गलत कर रहे हैं। लेकिन हजरत मुहम्मद साहव को गीतकार ने अपने गीत में मां की उपमा क्यों दी है? हो सकता है—पहिले इनके पुरखे हिन्दू रहे होंगे और मां काली के भक्त हों। वंगाल में देवीकाली को मां के नाम से ही जाना जाता है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस भी देवी को मां ही कहा करते थे। हो सकता है कि परम्परागत हिन्दू संस्कारवश मुस्लिम गीतकार ने पैगम्वर को मां के नाम से संवोधित किया हो। मैंने सोचा, "इनके पास जाकर समझाया जाय कि इस्लाम में शराब पीना जायज नहीं है।" मैं उठा और पास वाली कोठरी का किवाड़ खोलकर अन्दर घुसा तो क्या देखता हूं कि पांच-सात आदमी शराव पीकर चंडू का दम लगा रहे हैं। उन्होंने मुझे देखा तो घवड़ा गए और उनमें से एक वोला, "ऐ बाबू कौन है?" मैंने कहा, "डरो मत, मैं साधु हूं और पास के क्वार्टर में ठहरा हुआ हूं। आप लोग तो भले आदमी मालूम पड़ते हो, फिर यह शराब क्यों पी रहे हो? इस्लाम धर्म में शराब पीना जायज नहीं है। वे बोले, "हां बावा अब हम नहीं पीएगा। अब हम यहां से घर चला जाएगा।" वे सब गिरते-पड़ते अपने घर की ओर चले गए और मैं वापिस आकर अपने क्वार्टर में आसन पर काफी देर तक सोचता रहा कि मजदूरों के हितों का दम भरने वाला साम्यवादी दल का कोई सदस्य इनकी खोज़-खवर क्यों नहीं लेता और सुधारवादी इनको इन कुव्यसनों से क्यों नहीं छुड़ाता।

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।
धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः ॥

कथामणि १०

मन ही वृन्दावन

हम शक्तिनगर से आगे चले। एक दिन कोई बीस मील का विहार करना पड़ा। उस दिन विश्राम का स्थान मिलता ही नहीं था। अन्त में संध्या समय एक छोटे से गांव में एक मारवाड़ी अग्रवाल महाजन ने अपनी नई दुकान जो ऊपर से बन चुकी थी और नीचे फर्श बाकी था, हमें विश्राम के लिए दी। हमने उस दुकान की रेती पर अपना डेरा जमाया। नित्य कर्म को समाप्त करके सोना चाहते ही थे कि उसी समय वह महाजन बन्धु अपने कुटुम्ब के साथ उपदेश हेतु उपस्थित हुआ। मैंने उसे जैन साधु के आचार सुनाए। वह प्रसन्न होकर कहने लगा कि दो-चार दिन की स्थिरता कीजिए। हमें बहुत दूर जाना है यह कहकर बात समाप्त की। प्रातःकाल हम विहार की तैयारी कर रहे थे कि अकस्मात् उस महाजन की छोटी बहिन, जो बाल विधवा थी, अपने नौकर को साथ लेकर हमारे पास आई और कहने लगी कि बाबा मुझे साथ ले चलो। अब मेरा मन संसार में नहीं लगता है। भौजाइयों के तानों से परेशान हो गई हूँ। हिन्दू विधवा का जीवन एक कैदी से कम नहीं है। मुझे साथ ले चलो आपकी सेवा-टहल करती रहूंगी। अन्त में वृन्दावन में छोड़ देना, वहाँ ही बांके बिहारी में लीन हो जाऊंगी। मैंने कहा, "बहन हम जैन साधु हैं, औरतों को साथ नहीं रखते। स्त्रियों का परिचय ब्रह्म-भावना में बाधा डालता है। तुम किसी जैन साध्वीजी का परिचय करो और घर वालों की आज्ञा लेकर उसी के पास जाओ।" युवती ने कहा, "बाबा मुझे बेटी के समान समझो। आदमी की दृष्टि में ही पाप बसता है। यदि आपकी और मेरी दृष्टि निर्दोष है तो साथ में रहने से क्या हानि है? मीरा बाई भी तो सन्तों की सेवा में रहती थी। कहा भी है–

> या तन को मैं करूँ कींगरी, रसना राम कहूँगी।
> मीरा के प्रभु गिरधर नागर, साधों संग रहूंगी।।
> मैं तो बैरागन हूँगी.........................

मैंने कहा, "वहन मीरा वाई तो पहुंची हुई महात्मा थी। उसकी वात दूसरी है। हम तो कलयुग के संत हैं। विल्ली और चूहे का एक साथ रहना खतरनाक है, इसी तरह औरतों के साथ रहना है। हमारा समाज ऐसी स्थिति को एक क्षण भी सहन नहीं करेगा। तुम अपने घर में रह कर ही कुटुम्व की सेवा करो। तुम्हारी सेवा कभी न कभी रंग लायेगी और भौजाइयों का हृदय भी तुम्हारे प्रति कोमल हो जाएगा। रही वृन्दावन में छोड़ने की वात तो मन ही वृन्दावन है। वांके विहारी अपने से परे नहीं हैं। जितनी भी आत्माएं हैं वे सव वांके विहारी हैं। गीता में कहा है–

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।। अध्याय ६ : २६

भावार्थ – योगयुक्त व्यक्ति समदर्शी होता है। वह अपनी आत्मा में सर्वभूतों को देखता है और सर्वभूतों में अपनी आत्मा को देखता है।

तुम वांके विहारी को अपने जीवन में उतारो और इससे तुम एक दिन स्वयं संत वन जाओगी। वृन्दावन जाने की वात को मन से निकाल देना। वृन्दावन में सव संत ही रहते हैं ऐसी वात नहीं हैं। युवती ने कहा, "आपकी आज्ञा है तो यहीं रह कर साधना करूंगी। अव कृपा करके मेरी तुच्छ भेंट को स्वीकार करें। पच्चीस रुपये, एक कम्वल, दस सेर आटा, सेर भर घी, कुछ नमक, मिर्च-मसाले, ये सव चीजें प्रसाद में काम आएँगी।"

मैंने कहा, "नहीं वहन, हमें ये चीजें नहीं कलपतीं। हम रुपये पैसे नहीं छूते। कम्वल की जरूरत नहीं। रहा आटा-दाल, वह भी नहीं चाहिए क्योंकि हम गोचरी करते हैं।"

युवती ने निवेदन किया, "वावा सर्दी वहुत पड़ती है, कम्वल की भेंट तो स्वीकार करो।" मैंने कहा, "यह भार उठाना असंभव है। धर्म लाभ। आनन्द करो। परमात्मा के स्मरण में हमें भी याद करना।"

सन्त कृपा थी छूटे माया, काया निर्मल थाय जोने ।
स्वासो स्वासे स्मरण करता, पांचे पापो जाय जोने ।।

– सन्त प्रीतमदास

कथामणि ११

पीलिया की लपेट में

हमने झरिया होते हुए पुनः गिरिराज सम्मेत शिखरजी के दर्शन किये। यह वही तीर्थ है जहां २० तीर्थंकर भगवान मोक्ष पधारे। इसे देखकर जी चाहता है कि इसकी किसी गुफा में पड़े रहें और आनेजाने वाले यात्रियों से आहार-पानी मिल जाया करे और जिन्दगी यहाँ ही पूरी कर दें। सच्चे देव का जब आसरा लिया है तो फिर डर किसका? हे मन, इसी की उपासना करो, इसी का ध्यान धरो, इसी के शासन को स्वीकार करो।

सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः ॥४॥
ध्यातव्योऽयमुपास्योऽयमयं शरणमिष्यताम्।
अस्यैव प्रतिपत्तव्यं शासनं चेतनाऽस्ति चेत् ॥५॥

योगशास्त्रं, द्वितीयः प्रकाशः।

अर्थात्– जो सर्वज्ञ हो, राग द्वेष आदि आत्मिक विकारों को जिसने पूर्ण रूप से जीत लिया हो, जो तीनों जगत् के द्वारा पूज्य हो और यथार्थ वस्तु-स्वरूप का प्रतिपादक हो, ऐसे अर्हन्त भगवान् ही सच्चे देव हैं। अर्हन्–परमात्मा ही ध्यान करने योग्य हैं। वही उपासना करने योग्य हैं। उन्हीं की शरण ग्रहण करना चाहिए। यदि तुम में चेतना है, समझदारी है, विवेक है तो अरिहन्त प्रभु के शासन आदेश को स्वीकार करो।

सम्मेत शिखरजी से हमने राजगृही का प्राचीन मार्ग पकड़ा। यह मार्ग जंगलों से निकलता हुआ कोडरमा होकर राजगृही जाता है। हम आठ-दस दिन में ही राजगृही पहुंच गये। नालन्दा, पावापुरी, विहार शरीफ होते हुए हम पटना पहुंचे। वहां श्री कमलसिंहजी बरदिया साहब ने बड़ी भक्ति बताई और वैशाली जाने के लिए विशेष आग्रह किया। हमें वैशाली जाना जरूरी था क्योंकि यह स्थान भगवान् महावीर की जन्मभूमि है। पटना के पास ही सोनभद्र, गंगा और गंडकी तीनों नदियों का संगम होता है। और अन्त में यह गंगा रह जाती है जो सागर में मिलने से पूर्व में बड़े वेग से दौड़ती है। यहां

गंगा का पट बहुत वड़ा हो जाता है— कोई छः-सात मील जितना। हमने नौका में वैठ कर और कुछ पैदल चल कर इस महातट को पार किया और हाजीपुर पहुंचे। हाजीपुर से ही विदेह जनपद प्रारम्भ हो जाता है जिसे आजकल तिरहुत कहते हैं। यह तीरभुक्ति का अपभ्रंश है। तीरभुक्ति गुप्त सम्राटों द्वारा दिया हुआ नाम प्रतीत होता है। हम हाजीपुर से लालगंज होते हुए वैशाली पहुंचे। वैशाली प्रदेश वहुत ही सुन्दर है। यहां केला, आम और लीची के वड़े-वड़े वागों को देख कर चित्त वहुत प्रसन्न हुआ। यहां के लोग वहुत भले और अतिथि-परायण हैं। वैशाली से हमने छपरे की राह ली। यहां दिगम्वर भाई लल्लन प्रसादजी ने वहुत भक्ति वताई। छपरा से हम खोखुन्दो, गोरखपुर, बस्ती, लकड़मंडी होते हुए अयोध्या आए। यह स्थान भगवान् आदिनाथजी व भगवान् राम का जन्मस्थल है। यहां तीर्थंकरों के उन्नीस कल्याणक हुए हैं। परम पवित्र साकेत के दर्शन कर लखनऊ होते हुए कानपुर से फिरोजाबाद आए और वर्षावास यहीं किया। फिरोजावाद के चौमासे में विजोवा निवासी राठोड़ रिखवदासजी और वाली निवासी पोरवाल गौडीदासजी ने खूब लाभ लिया। शोरी पुर की यात्रा कर हम मेरठ होते हुए हस्तिनापुर की तरफ जा रहे थे कि मुझे पीलिया हो गया। उस समय दिल्ली मेरठ के आस पास यह रोग जोरों से फैल रहा था जिसमें हजारों व्यक्तियों की मौतें हो चुकी थीं। मेरा भी बुरा हाल था। मौत सामने खड़ी नजर आ रही थी। खून का पानी हो गया था। मेरठ के एक वैद्य ने यह कह दिया कि महाराज दो-चार दिन के महमान हो। मैं पीड़ा से वेहद परेशान था। एक दिन मन में यह प्रतिज्ञा की कि इस वार इस महाव्याधि से छुटकारा मिले तो श्री सिद्धाचलजी की यात्रा करूं। प्रतिज्ञा के दो-तीन दिन वाद ही तवियत सुधरने लगी और एक महीने में चंगा हो गया। अव हमने मारवाड़ की ओर विहार किया और धीरे-धीरे विहार करते हुए श्री सिद्धाचलजी पहुंचे गये। यह चौमासा वल्लभ विहार पालीताणा में किया।

विमल गिरि वन्दोरे देखत दुःख हरे।
पुण्यवन्ता प्राणि रे प्रभुजी की सेवा करे॥

तृतीय खण्ड

कल्प-पुष्प

सन्तों का है पन्थ निराला,
क्या कांटा, क्या मणि-माला।
है सुख की उनको चाह नहीं,
आज यहाँ कल और कहीं॥
वे आशीषों के कल्प-पुष्प हैं,
जीवन उनके प्रेम-विटप हैं।
— कवि अनाम

सन्त-वचन कल्प-पुष्प समान हैं। उनका जीवन कल्पवृक्ष के समान है। कल्पवृक्ष के पास जो कोई इच्छा व्यक्त करता है — वह पूर्ण होती है। उसी प्रकार सन्तों के वचन फलते हैं। मुनिराजजी वल्लभदत्त विजयजी की कुछ वचन-सिद्धियां और चमत्कार 'कल्प-पुष्प' शीर्षक के अन्तर्गत अंकित हैं।

कल्प-पुष्प १

'समभाव रूपी चमत्कार'

प्रश्न — आपके बारे में लोगों का ख्याल है कि आपके पास कोई चमत्कार है, ऋद्धि-सिद्धि है जिससे कि आपके सब कार्य सम्पन्न हो जाते हैं।

उत्तर — मेरा दृढ़ संकल्प ही सबसे बड़ा चमत्कार है। मैं तो अपने सब कार्यों में गुरु की अनुकम्पा ही मानता हूं। कोई चमत्कार तो मुझे अभी तक मिला नहीं, अब जरूर एक चमत्कार प्राप्त करने का विचार है।

प्रश्न — वह कौन सा चमत्कार है, गुरुदेव ?

उत्तर — मैं चाहता हूं कि मुझमें इतनी क्षमता आजाय कि कोई प्रशंसा करे कि निंदा, कोई मार डालने की धमकी दे या कोई पूजा करे, मुझ में इतना समभाव आजाय कि अपराधी के प्रति मेरे मन में जरा भी कटुता न आने पावे। मन, वचन, काया के योगों में

स्थिरता आजाय तो यह समझिए कि सबसे बड़ा चमत्कार मिल गया। मैं इस समतारूपी चमत्कार की खोज में हूं– देखता हूं कि वह कब प्रकट हो जाय।

प्रश्न – लोगों के ख्याल के बारे में आपने कुछ भी प्रकाश नहीं डाला ?

उत्तर – यह सब काकतालीय न्याय है। इसमें कुछ भी नहीं धरा। यह कहकर महाराजजी मौन हो गये।

टिप्पणी – इस संबंध में मैंने मुनिराजजी के शिष्यरत्न श्री महिमा विजयजी से एकान्त में पूछताछ की तो उन्होंने गुरुदेव की वचन-सिद्धि संबंधी कुछ घटनाएं बताईं। उसका उल्लेख मैं आगे कर रहा हूं।

'सहज प्रकाश' शीर्षक लेख में संतों की भविष्यवाणी, चमत्कार या अतीन्द्रिय ज्ञान के संबंध में लेखक के विचार अंकित हैं।

कल्प-पुष्प २

तू प्रभु भजन कर प्राणी

सन् १९४६ में महाराज साहब का चौमासा खांभल में हुआ। जिस उपाश्रय में महाराज साहब ने चातुर्मास किया वह एक कुम्हार की जगह थी। श्री चमनाजी नाथाजी के सुपुत्रों ने उस जगह को पक्के पट्टे पर लेकर धर्मशाला बनवायी। वह कुम्हार अपनी पुरानी जगह को देखकर ममतावश आंखों में आंसू लाकर विलाप करता रहता। कहा जाता है कि वह मरकर व्यंतर हुआ और उसी स्थान पर रहने लगा। महाराजश्री ने चौमासा किया तब उसने कई बार पाट को उठाकर आगे पीछे रख दिया जिससे वे ऊपर की मंजिल पर चले गये। एक बार सिद्धाचलजी की यात्रा करके महाराजश्री पुनः खांभल पधारे और कुछ दिनों तक उसी धर्मशाला में ठहरे। पास ही सरकारी थाना था जिसमें एक पुरबिया भैया थानेदार थे जो हृष्ट-पुष्ट और देखने में बड़े रौबीले व्यक्तित्व वाले थे। ग्रीष्म ऋतु थी और वह स्थान हवादार था अतः उसने महाराजश्री को उस स्थान में अपनी खटिया लाकर सोने की विनती की। महाराजश्री ने कहा कि मुझे क्या एतराज है। तुम्हारी इच्छा। वह थानेदार

अपनी खटिया पर सोगया। रात्रि में ऐसी घटना घटी कि थानेदार नीचे और खटिया ऊपर। श्रीमान् थानेदारजी न जाने कब भाग कर अपने मकान पर चले गये—इसका पता तक नहीं चला। प्रातःकाल उसने कहा, महात्माजी मैं अब यहां सोने के लिये नहीं आऊंगा क्योंकि इस धर्मशाला में भूत रहता है।

प्रतिदिन प्रातःकाल महाराजश्री सिद्धाचलजी के स्तवन और पूजा की ढालें अत्यन्त मधुर स्वर में गाते, जिससे प्रभावित होकर एक दिन स्वप्न में व्यंतर ने कहा, "मै अब बहुत प्रसन्न हूं और कोई उपद्रव नहीं करूंगा।

कल्प-पुष्प ३

भक्ति का प्रसाद

सन् १९६२ का चातुर्मास महाराजश्री ने हस्तिनापुर किया। उस समय मेरठ निवासी पंजाबी चमनलाल महाराज साहब के पास पर्युषण करने हस्तिनापुर आये। श्री चमनलालजी के १२ वर्ष से कोई सन्तान नहीं थी अतः पति-पत्नी दोनों उदास रहते थे। एक दिन गुरुदेव ने उसके मुख पर विषाद की रेखा देखकर कहा कि तुम भगवान् शान्तिनाथजी की सच्चे मन से सेवा करो और स्वामी भाइयों की भक्ति। तुम्हारी मनःकामना शीघ्र पूरी होगी— इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं है।

इस कथन के बाद नौ महीने पूर्ण होने पर उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। आजकल वे आगरे में हैं और गुरुदेव के प्रति उनका बड़ा अनुराग है।

कल्प-पुष्प ४

गुरु वचन या आनन्द कोष

हस्तिनापुर के चातुर्मास के अन्तर्गत लाला महावीर प्रसाद मेरठ निवासी ने एक दिन गुरुदेव से दुखी होकर कहा, मेरे प्रपौत्र नहीं है—आपका आशीर्वाद चाहता हूं। महाराज साहब ने फरमाया, भगवान शान्तिनाथजी की शरण लो—सब आनन्द मंगल होगा।

उनकी मन:कामना फल गई और वे गुरुदेव के प्रति अटूट श्रद्धा भाव रखते हैं।

जब हस्तिनापुर के दोनों चातुर्मास पूर्ण होने पर गुरुदेव मारवाड़ की तरफ चले तब बिनौली निवासी लाला जयप्रकाश जैन से महाराजजी ने कहा, "हस्तिनापुर की प्रतिष्ठा पूज्यपाद आचार्यजी विजय समुद्र सूरिजी महाराज के हाथ से होगी लेकिन विघ्न बहुत आयेंगे कि तुम्हें सहना कठिन पड़ेगा।" यह बात सोलह आने सच निकली।

कल्प-पुष्प ५

दुर्घटना की भविष्यवाणी

सांड़ेराव में मंदिरजी की जाली का कार्य चल रहा था। एक दिन प्रतिक्रमण की तैयारी हो रही थी। उस समय महाराजश्री ने एक श्रावक से कहा, "मन्दिर में जाइये और देखकर आइये कि किसी मजदूर को गहरी चोट तो नहीं लगी है। मुझे ऐसा लगता है कि मंदिर में कोई दुर्घटना घटी है।" श्रावकों ने जाकर देखा तो दस मिनट पहले ही दुर्घटना में एक मजदूर मरते-मरते बाल-बाल बच गया था। यह देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हो गये कि गुरुदेव को मन्दिर की दुर्घटना का ज्ञान कैसे हो गया ?

कल्प-पुष्प ६

भक्त या क्या ?

उदयपुर के चौमासे की जय बोलने के बाद महाराजश्री ने फरमाया कि यह चौमासा बड़ा खराब निकलेगा। ये भगत लोग ही परेशान करेंगे। चलो, होगा सो देखा जाएगा – भगवान केसरिया नाथजी की कृपा से सब ठीक होगा। महाराजश्री की यह भविष्यवाणी भी अक्षरश: सत्य निकली।

जय गुरुदेव।

कल्प-पुष्प ७

जाओ, पास हो जाओगी

सहादरा दिल्ली निवासी लाला भोला नाथजी पंजाबी (भूतपूर्व प्रेसीडेण्ट, आत्मानन्द महासभा पंजाब) की सुपुत्री ने गुरुदेव से कहा,

"मैं एलएल०वी० की परीक्षा में दो वार फेल हो गई हूं। अव परीक्षा देने का मन नहीं करता।" महाराजश्री ने फरमाया, "एक वार तू मेरे कहने से और परीक्षा दे दे – जाओ पास हो जाओगी।" शिष्यरत्न ने उपर्युक्त घटना पर प्रकाश डालते हुए एक रोचक प्रसंग सुनाया। वह लड़की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गई थी किन्तु उसकी सहेली ने गलत समाचार सुनाया। इससे उसके मन तथा उसके परिवार जनों के मन में खलवली मची और वे सोचने लगे कि गुरुदेव ने तो फरमाया था कि वह पास हो जायगी फिर यह गड़वड़ी कैसी। दो-चार दिन के वाद समाचारपत्र द्वारा सही स्थिति का ज्ञान हुआ तव उन्होंने गुरुदेव को पत्र लिखकर आभार प्रदर्शित किया।

कल्प-पुष्प ८

सत्यपथ के राही के साथ

(मुनिराजजी के साथ लेखक की यात्रा का एक अविस्मरणीय प्रसंग)

१७ दिसंवर १९६८ की वात है। मुनिराजजी विहार करके विद्यावाड़ी, खीमेल की ओर जाने लगे। मैं भी उन्हें पहुँचाने के लिए साथ हो लिया। मार्ग में वात ही वात में मैं खीमेल स्टेशन से आगे तक पहुँच गया। उनके साथ पैदल घूमने का जो आनन्द आया, उसका मैं क्या वर्णन करूँ। विद्यावाड़ी मील भर दूर थी। संध्या के चार वजे होंगे। अस्ताचल की ओर गगनविहारी अपने कदम वढ़ा रहा था। शीत ऋतु की ठंड मुझे स्पर्श कर मानो यह कर रही थी कि अव आगे मत वढ़ो, रुक जाओ और गुरुदेव से आशीष लेकर खीमेल की ओर लौट चलो। सहसा गुरुदेव ने कहा, "अव वहुत दूर आ गये हो, लौट जाओ।" मैंने कहा, 'लोकल गाड़ी सदा देर से आती है, आपको विद्यावाड़ी पहुँचा दूं, फिर मैं वहाँ से शीघ्र ही प्रस्थान कर दूँगा।'

गुरुदेव ने कहा, "अच्छा, थोड़ी देर के लिए यहाँ विश्राम करो।" 'हम दोनों' समीप के पत्थरों पर बैठ गये। सामने हिंगलाज की पहाड़ी अपनी नीलिमा में वड़ी सुहावनी लग रही थी। उसके पार्श्व में हरे भरे पेड़ स्पष्ट तो दिखाई नहीं देते थे, किन्तु अपनी हरीभरी शोभा में हमें नयनाभिराम लग रहे थे। लगभग ५-७ मिनट हम बैठे होंगे।

उनकी मन:कामना फल गई और वे गुरुदेव के प्रति अटूट श्रद्धा भाव रखते हैं।

जब हस्तिनापुर के दोनों चातुर्मास पूर्ण होने पर गुरुदेव मारवाड़ की तरफ चले तब बिनौली निवासी लाला जयप्रकाश जैन से महाराजजी ने कहा, "हस्तिनापुर की प्रतिष्ठा पूज्यपाद आचार्यजी विजय समुद्र सूरिजी महाराज के हाथ से होगी लेकिन विघ्न बहुत आयेंगे कि तुम्हें सहना कठिन पड़ेगा।" यह बात सोलह आने सच निकली।

कल्प-पुष्प ५

दुर्घटना की भविष्यवाणी

सांड़ेराव में मंदिरजी की जाली का कार्य चल रहा था। एक दिन प्रतिक्रमण की तैयारी हो रही थी। उस समय महाराजश्री ने एक श्रावक से कहा, "मन्दिर में जाइये और देखकर आइये कि किसी मजदूर को गहरी चोट तो नहीं लगी है। मुझे ऐसा लगता है कि मंदिर में कोई दुर्घटना घटी है।" श्रावकों ने जाकर देखा तो दस मिनट पहले ही दुर्घटना में एक मजदूर मरते-मरते बाल-बाल बच गया था। यह देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हो गये कि गुरुदेव को मन्दिर की दुर्घटना का ज्ञान कैसे हो गया ?

कल्प-पुष्प ६

भक्त या क्या ?

उदयपुर के चौमासे की जय बोलने के बाद महाराजश्री ने फरमाया कि यह चौमासा बड़ा खराब निकलेगा। ये भगत लोग ही परेशान करेंगे। चलो, होगा सो देखा जाएगा – भगवान केसरिया नाथजी की कृपा से सब ठीक होगा। महाराजश्री की यह भविष्यवाणी भी अक्षरश: सत्य निकली।

जय गुरुदेव।

कल्प-पुष्प ७

जाओ, पास हो जाओगी

सहादरा दिल्ली निवासी लाला भोला नाथजी पंजाबी (भूतपूर्व प्रेसीडेण्ट, आत्मानन्द महासभा पंजाब) की सुपुत्री ने गुरुदेव से कहा,

सहज प्रकाश

मुनिराजजी की वचन-सिद्धियां उनकी निश्छलता और निर्मलता की द्योतक हैं। आधुनिक युग की वैज्ञानिक दृष्टि मानस लोक की गहराई की खोज में लगी हुई है। ज्ञान प्रकाश मस्तिष्क के सूक्ष्म तन्तुओं को जब आलोकित करता है तब उस दिव्य मस्तकधारी ज्ञानवन्त से ऐसी भविष्यवाणी प्रसूत होती है जो सच्ची बैठती है। राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के परा-मनोविज्ञान के विद्वान् प्रो० बेनर्जी ने मस्तिष्क के दिव्य स्वरूप की अपने लेखों में चर्चा की है। साधु-सन्तों की सच्ची चमत्कारपूर्ण भविष्यवाणियों तथा वचन-सिद्धियों के संबंध में मैं कुछ विचार कर रहा था कि मुझे महर्षि अरविंद घोष के सावित्री महाकाव्य की इन पंक्तियों ने दृष्टि दी :—

"Often a lustrous inner dawn shall come
Lighting the chambers of the slumbering mind;
A sudden bliss shall run through every limb
And Nature with a mightier Presence fill.
Thus shall the earth open to divinity
Nature shall live to manifest secret God,
The spirit shall take up the human play,
This earthly life become the life divine."

– Savitri

अर्थात्—दिव्य मनुष्य के भीतर प्रातःकालीन शोभा के समान उज्ज्वल प्रकाश रहता है जो उसके सुषुप्त मस्तिष्क के प्रत्येक कोने को आलोकित करता है। जब यह प्रकाश मस्तिष्क में अपनी ज्योति विकीर्ण करता है, उस समय उसका अंग-अंग और रोम-रोम स्वर्गिक आनन्द से झूमने लगता है। इस प्रकार यह आभा या ज्योति प्रकृति में दिव्य सत्ता के समान छा जाती है और ऐसे दिव्य मनुष्य जहां विचरण करते हैं उस भूमि पर अलौकिक स्वर्गीय सौंदर्य फैल जाता है।

दिव्यात्माएँ ईश्वरीय शक्ति को प्रकट करने के लिये उत्पन्न होती हैं और वे समस्त भौतिक जीवन को आध्यात्मिक अमरता से रंगने के लिये सत्प्रयास करती हैं।

आत्म-विज्ञान (Science of soul) के लिये पश्चिम का भौतिक संसार उत्कंठित हो गया है। बीटल गायकों का महर्षि महेश के आश्रम में अतीन्द्रिय ध्यान की खोज में आना यह प्रदर्शित करता है कि भारत परा-विद्या की पूर्णता तक पहुँच गया है। वह आत्म-विज्ञान के संबंध में जगत् को बहुत कुछ दे सकता है। चन्द्रलोक की अन्तरिक्ष यात्रा तथा अन्य वैज्ञानिक उपलब्धियां विश्व के राष्ट्रों की नवीनतम सफलताएँ हैं परन्तु भौतिक उन्नति के इन यांत्रिक उपकरणों एवं साधनों में मानव मानस की अशान्ति और तड़पन की धड़कनें स्पष्ट सुनाई दे रही हैं—अतः हमें आत्मशान्ति के लिये आत्मविज्ञान की शरण में जाना होगा। यह ज्ञान हमारे अन्तःचक्षु खोलेगा और मनुष्य में सभी के प्रति प्रेम, करुणा और सहानुभूति की भावना भरेगा।

इस संदर्भ को ध्यान में रखकर मैंने मुनिराजजी की कुछ वचन-सिद्धियों का यहां उल्लेख किया है। वे दिव्य स्वरूप को किसी न किसी रूप में प्रकट करती हैं।

वैसे चमत्कारों की आड़ में धूर्तों ने भोलीभाली जनता को ठगा है और आज भी उनके विषैले पंजों में अंधविश्वासी जनता जकड़ी हुई है। शिक्षा ने उनकी कलई खोल दी है—परन्तु मैं जिस अतीन्द्रिय ज्ञान की चर्चा कर रहा हूँ वह शुद्ध, आडम्बरहीन और उज्ज्वल है। सन्तगण त्यागी होते हैं; उनको शारीरिक सुख की चाहना तनिक भी नहीं रहती; वे मोह-माया के इन्द्रजाल से दूर रहते हैं और वे भटकते दुःखी प्राणियों के लिये सत्कार्य में प्रवृत्त रहते हैं। उन महात्माओं के प्रति श्रद्धा-भाव अनायास ही हो जाता है।

चतुर्थ खण्ड

उपनिषद्

लेखक के प्रश्नों के मुनिराजजी ने शास्त्रसम्मत उत्तर दिये हैं। प्रश्नोत्तर विविध विषयों से संबंधित हैं—जैसे संगीत-कला, ज्योतिष शास्त्र, जीर्णोद्धार, हरिजन मंदिर-प्रवेश, विद्यार्थी असन्तोष, गुरु-शिष्य सम्बन्ध, शिक्षा आदि।

'जीर्णोद्धार' के संबंध में श्री आनन्दजी कल्याण पेढ़ी के साथ किया गया पत्र-व्यवहार प्रस्तुत किया गया है। संगीत एवं ज्योतिष विषयक प्रश्नोत्तर में मुनिराजजी के रोचक संस्मरण हैं। उत्तर अत्यन्त ही सारगर्भित एवं वैज्ञानिक शैली में हैं। उनमें शास्त्र-ज्ञान दर्शनीय है।

उपनिषद् में ज्वलन्त प्रश्नों के उत्तर पढ़कर पाठक स्फूर्त हुये विना नहीं रह सकते।

संगीत

प्रश्न — लेखक के : उत्तर — महात्माजी के।

प्रश्न — महाराजजी मैंने सुना है कि आपने संगीत का अभ्यास किया है, क्या यह सही है?

उत्तर— सही है, किन्तु मेरे विरोधियों ने इस संबंध में बहुत सारा बावेला मचा रखा है, वह सही नहीं है। जैन शास्त्रों में जैन साधु को संगीत सीखना साफ मना है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है—

सव्वं विलवियं गीयं सव्वं नट्टं विडम्बियं।
सव्वे आभरणा भारा सव्वे कामा दुहावहा॥ —अ० १३ गाथा १६

अर्थ — सब गीत विलाप है, सब नाटक विडम्बना है, सब आभरण भार रूप हैं और सब कामना दुःख को देने वाली है।

लेकिन सुन्दर स्वर से तालवद्ध होकर वीतराग के गुण-कीर्तन में कुछ भी वुराई नहीं है। एकान्त में बैठकर श्री वीर विजयजी महाराज की पूजा एवं अध्यात्मयोगी आनन्दघन के पद गाकर आत्म-तुष्टि करने में कौन-सा दोष है ? व्याख्यानों में तो साधु-महात्मा भाव-भरे गीतों का प्रयोग करते ही हैं, पवित्र संगीत धर्म-प्रचार में सहायक ही हो सकता है। यह प्रयोगकर्ता के ऊपर निर्भर करता है कि वह इसका कैसा उपयोग करे। हर वस्तु का सही या गलत उपयोग हो सकता है। वास्तव में वस्तु सही या वुरी नहीं है। अव मैं आपको साफ वताना चाहता हूँ कि मैंने संगीतकला का गलत प्रयोग नहीं किया। मेरे विरोधियों ने मेरे वारे में अनेक गलत वातें फैला रखी हैं। जैसे कि हारमोनियम वजाते हैं, तवला वजाते हैं, नाचते हैं, गाते हैं और लटका करते हैं। ये सव वातें हमारे परम मित्रों की फैलाई हुई हैं। जव मैं वम्बई में लाल वाग में चौमासे हेतु गया तव भी लोगों ने ऐसी वातें फैलाकर जन-भावना को मेरे विरुद्ध करने की कोशिश की थी। किन्तु मैंने विरोधियों की ऐसी वातों को मौन रहकर सहन किया है क्योंकि छिद्रान्वेषियों का मुंह वन्द नहीं किया जा सकता। कहा भी है—

हाथी चलत है अपनी चाल से,
कुतर भुसत वाको भुसवा दे।
तू राम भजन कर जग लड़वा दे।

(मीरा के पद से)

अव मैं मूल वात पर आता हूँ। एक वार मैं सिरोही में ठहरा हुआ था। वहां भगवान अजीतनाथजी के मन्दिर में पूज्य वीर विजय विरचित पूजा पढ़ाई जारही थी। श्री नैनमलजी भगत हारमोनियम वजा रहे थे और तवले की संगत कर रहे थे श्री शंकरलाल सोनी। श्री शंकरलाल सोनी संगीतकला के विशेषज्ञ हैं। ये संगीत-सम्राट् ओंकारनाथजी के शिष्य हैं। (इस समय शंकरलालजी ने संन्यास ग्रहण कर लिया है) श्री शंकरलाल सोनी ने, जो कि सूरदास हैं, पूजा में एक पद आचार्य लब्धिसूरिजी का गाया जिसका पहिला वोल था सोऽहं सोऽहं वोल मनुआ। इस पद का असर मेरे दिल को छू गया और मैंने कहा कि सूरदासजी इस स्तवन को एक वार और वोल दो। उसने स्तवन फिर

दोहराया। तत्पश्चात् भगत नैनमलजी ने मुझसे कहा कि आप भी एक स्तवन कहिये। मुझे स्तवन आता ही नहीं था। अतः पहिले मैंने टालमटोल की फिर अधिक आग्रह होने से पूजा पढ़ाने लगा। मुझे ताल-स्वर का बिल्कुल अभ्यास नहीं था। मेरा स्वर कहीं था और वाद्य-यंत्रों के स्वर और कहीं। ऐसी हालत में भगत लोग तो प्रसन्न थे मगर सूरदास शंकरजी मन ही मन मुस्करा रहे थे। उनकी मुस्कराहट मुझसे छिपी नहीं रही। मैंने अनुभव किया कि सूरदासजी का हंसना व्यर्थ नहीं है। इसमें कुछ राज अवश्य है। पूजा उठने के बाद मैंने सूरदासजी को पास में बुलाकर हंसने का कारण पूछा। पहिले तो वे टरकाने लगे फिर कहने लगे कि आपका ताल-स्वर बेताल था। मैंने उनसे पूछा कि यह कैसे ठीक हो सकता है? उन्होंने कहा कि मैं सब कुछ ठीक कर दूंगा और दूसरे दिन वे अपने घर से तानपूरा लाकर मुझे स्वर का अभ्यास कराने लगे। घंटों तक स्वर-साधन चलता रहता और सूरदासजी तानपूरा बजाते रहते। मैं स्वर का साधन करता रहता। स्वर का साधन करना एक प्रकार का ध्यान-योग है। यह अभ्यास एकान्त और एकाग्रता मांगता है। जब मैं स्वर-साधन करता तो उपाश्रय का द्वार बंद कर दिया जाता। सूरदासजी को यह पसंद नहीं था कि स्वर-साधन के समय कोई आदमी आकर हमसे बातचीत करे या हमारे पास बैठकर तमाशा देखे। अब मेरे स्वर में स्थिरता आने लगी थी। रागों की पहचान होने लगी। मैंने यह अभ्यास काफी दिनों तक जारी रखा। सिरोही छोड़कर मैं जब जोधपुर गया तब भी वहां पर यह अभ्यास जारी रखा। जोधपुरमें रहकर अल्लारखां जैसे उस्तादों से भी सीखता रहा। मियां अल्ला रखा संगीत के बहुत बड़े मर्मज्ञ थे। वे गुरांसा चारणोंद की हवेली में आया जाया करते थे। गुरांसा भी संगीत के विशेषज्ञ थे और ताल के तो बादशाह ही थे। उनके जैसा ताल का जानकार अब राजस्थान में भी नहीं है। इन दोनों महानुभावों का अब स्वर्गवास हो चुका है। मेरे बारे में सफलता का कारण मेरी एकान्त साधना है। मैं आज भी बिना वाद्य-यंत्रों के शुद्ध संगीत गा सकता हूं क्योंकि मेरी साधना में स्वर का पुट है। हारमोनियम के साथ गाने वाले संगीत के मर्म को नहीं समझ सकते। वे अपने [illegible] एवं बेसुरेपन को इसके माध्यम से छिपाया करते हैं। एक बार भारत के सुप्रसिद्ध [illegible] [illegible]

करियप्पा ने कहा था कि मेरा वस चले तो मैं भारत के समस्त हारमोनियमों को तोड़कर जला दूं और लोगों से कहूं कि स्वर-साधना करके अपना स्वर ठीक करो।

आज से पन्द्रह वर्ष पहिले से मैंने यह सब झंझट छोड़ दिया है। वस 'तू ही', 'तू ही' की आवाज भीतर ही सुन रहा हूं। पूज्य ज्ञान-विमलजी महाराज साहव ने फरमाया है—

प्रभु तूही, तूही, तूही, तूही धरना ध्यान रे।

ज्योतिष

प्रश्न—क्या आपश्री ने ज्योतिप शास्त्र का अभ्यास किया है? इस संवंध में कुछ प्रकाश डालने की कृपा कीजिये।

उत्तर—हां, किया है। ज्योतिप के दो भेद हैं—गणित और फलित। मैंने दोनों ही का अभ्यास किया है। जव मैं जोधपुर में था तव श्रीमान् आर० वी० कुम्भारे साहव के, जो महाराज कुमार कॉलिज के प्रिंसिपल थे, वंगले में ठहरा था। उस समय उन्होंने मुझ से एक ज्योतिषाचार्य की वड़ी प्रशंसा की जिनका नाम है श्री मांगीलाल दुवे। श्री कुम्भारे साहव से मैंने कहा कि उन ज्योतिषीजी को वुला लीजिए—मैं उनसे पढ़ना चाहूंगा। उन्होंने ज्योतिषाचार्यजी को वुला लिया और मेरी पढ़ाई चालू हो गई। वे नव्य गणित के महापंडित हैं। उन्होंने मुझे तीन वर्ष तक गणित पढ़ाया। डॉ० केतकर का ज्योतिष-गणित भी मैंने पढ़ा है। लेकिन अव तो मैंने पन्द्रह वर्षों से उसे छुआ तक नहीं है।

प्रश्न—गुरुदेव! इस शास्त्र को छोड़ने का कारण क्या है?

उत्तर—बात यह है कि ज्योतिष के नाम से आजकल खूव ठगाई चल रही है। आजकल सौ में से नव्वे आदमी अपने को ज्योतिषी कहते हैं। वे एक दो पंचाङ्ग लेकर भोली-भाली जनता को उल्लू वना कर अपना उल्लू सीधा करते हैं। सव लोग ज्योतिषी से अपना भविष्य जानना चाहते हैं। सट्टे वालों का सव काम-धाम ज्योतिष के वल पर ही चलता है। इन लोगों को मालूम पड़ जाय कि अमुक साधु ज्योतिष शास्त्र जानता है तो वे उसके पीछे पड़ जाते हैं। न रात देखते हैं

ग्रौर न दिन । मंत्री, विधायक, सरकारी ग्रफ़सर, सेठ साहूकार सभी इस ज्योतिष के मायाजाल में पड़े हैं । एक दिन की बात है, मैं कुशलाश्रम जोधपुर में श्री देवीचन्दजी शाह के घर के पास पर्णकुटी में ठहरा हुग्रा था । श्री शाह तपे हुए समाज सेवक हैं । हां तो एक दिन रात के ग्यारह बजे श्री देवीचन्दजी ने मुझे जगाया ग्रौर कहा कि दो सज्जन ग्रापसे मिलना चाहते हैं । मैंने कहा – ग्राने दीजिये । वे सज्जन ग्राये । उनमें से एक किसी कॉलेज के प्रोफेसर थे ग्रौर दूसरे रिटायर्ड जज । पहिले तो उन ग्रागन्तुक सज्जनों ने इधर-उधर की बातें कीं ग्रौर फिर मुख्य बात का सिलसिला शुरू हुग्रा । प्रोफेसर साहब ने कहा– हमने सुना है ग्राप ज्योतिष विद्या जानते हैं । यह भारत की बड़ी प्राचीन विद्या है । साधु-संतों के सिवाय इसका भेद कौन जान सकता है ? हमारे ऋषि-मुनियों ने कैसी-कैसी विद्याएं खोज निकाली हैं । जो काम ग्राज का वैज्ञानिक नहीं कर सकता वह काम हमारे महात्मा चुटकियों में कर देते हैं । ये मेरे मित्र जज साहब हैं–बड़े भले मानुष हैं । ग्रभी चार-पांच महीने पहले ग्रपने पद से रिटायर हुए हैं । इनकी जन्मपत्री मेरे पास है । दिन में तो कार्याधिक्य से समय नहीं मिला । विचार किया कि महात्माजी से रात में मिलेंगे । गीता में कहा है–

'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥' ग्र० २, श्लोक ६९

ग्रतः ग्राप तो रात को जागते ही हैं क्योंकि ग्राप मुनि हैं । मेरे मित्र की यदि जन्मपत्री देखेंगे तो बड़ी कृपा होगी । वैसे तो इन पर राम राजी हैं – ग्रच्छे खाते-पीते हैं । बेटे ग्रच्छे सरकारी पदों पर ग्रासीन हैं, परन्तु एक कर्मयोगी को सौ वर्ष तक कर्म करना ही चाहिए ऐसी शास्त्राज्ञा है । इन्हें नौकरी वापिस मिलेगी या नहीं – वैसे मिलने की संभावना है क्योंकि इनका सेवा रेकार्ड ग्रच्छा रहा है । ग्राप इनका जन्माक्षर देखकर यह बताइये कि क्या इनका काम बन जाएगा । मैंने कहा – जज साहब खाते-पीते हैं, बहुत दिनों तक सर्विस की है – ग्रब नौजवानों को भी कुछ मौका मिलना चाहिये । ग्रन्त में राम भजन करना उत्तम होगा । सारी जिन्दगी पीसते रहना ग्रच्छा नहीं है । जिस कर्मयोग की बात ग्रापने कही है वह ठीक है । जज साहब को सच्चा कर्मयोगी बन कर समाज की सेवा करनी चाहिये ।

पेंशनभोगी आप जैसे महानुभाव ही यदि समाज-सेवा से दूर रहेंगे तो क्या वीस वर्ष के नौजवान इस सेवा-क्षेत्र में आएंगे जन्मकुण्डली को आप अपने पास रखिए। मैं आज से प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं भी आज से इस पचड़े से दूर रहूंगा। आप मोक्ष का पुरुषार्थ करें – जन्म-मरण क्या है ? कर्म-वन्धन का स्वरूप क्या है ? तृष्णा आत्मा को कैसे भव-चक्र में डालती है, इन वातों का कभी एकान्त में विचार करें। रात अधिक हो गई थी। वे लोग अपने घर की ओर चले और मैं लम्वी तान कर सो गया। मैंने अपनी प्रतिज्ञा को आज तक निभाई है और इस ज्योतिष के मायाजाल से दूर रहा हूँ।

जातिमद विनाश की जड़ है

प्रश्न – जैन धर्म में जातिभेद नहीं माना है। भगवान महावीर देव ने जातिभेद का खंडन किया है और मानव को समान माना है, इस संवंध में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर – भगवान महावीर देव ने जातिभेद का खंडन नहीं किया है, अपितु जातिमद को वुरा कहा है। जातिमद ही अहंकार की जड़ है। जहां जातिमद से उत्थित अहंकार है वहां दुर्गति के द्वार खुले समझो। वैसे जातिभेद कहां नहीं है ? जर्मन, अंग्रेज, स्लाव, मंगोल आदि जातियां आज भी मौजूद हैं। नृवंश शास्त्र ने भिन्न-भिन्न जातियों का अस्तित्व माना ही है। उनकी भिन्न-भिन्न संस्कृतियां, रीति-रिवाज और आचार-विचार होते ही हैं, किन्तु जहां मानवता का प्रश्न है – वे सभी मानव हैं और सवको मानवीय दृष्टिकोण से देखना होगा। किन्तु जो सात्विक वृत्ति वाली जातियां हैं वे प्रशंसनीय हैं और जो तामसिक प्रकृत्ति वाली जातियां हैं वे सन्मार्ग पर चलें ऐसी कामना रखी जाती है। हमारे मनमें दो ही जातियां हैं – तामसी प्रकृतिवादी और सात्विक प्रकृतिवाली। यदि सभी मनुष्य सात्विक प्रकृति वाले हो जायँ तो विश्व में कोई दुःख ही न हो।

शिवमस्तु सर्वजगतः।

प्रश्न – मैंने सुना है कि आप हरिजन मंदिर-प्रवेश के समर्थक हैं और इसे जैन धर्मसम्मत समझते हैं।

उत्तर – हां, आपने जो सुना है वह ठीक है। हरिजन ही क्यों, प्राणिमात्र वीतराग देव की पावन मूर्ति के दर्शन का हकदार है। लेकिन शर्त यह है कि वह वीतराग देव को सच्चा देव समझे और जिन मंदिर की आशातनाओं को दूर कर प्रभु मूर्ति के दर्शन करें। मंदिर में जाने के लिये पवित्रता तो होनी चाहिए।

प्रश्न – क्या आप हरिजनों को दीक्षा का अधिकारी मानते हैं ?

उत्तर – हां अवश्य। मेरे पास अभी तक एक भी हरिजन नहीं आया है, यदि कोई मुमुक्षु आता तो उसे दीक्षा अवश्य देता।

प्रश्न – हरिजन और दीक्षा ?

उत्तर – भाई, दीक्षा के लेने के बाद अछूत अछूत नहीं रहता। वह मुनि बन जाता है। महाव्रतधारी हो जाता है। उसकी पूर्व जाति धर्म-कर्म में बाधक नहीं बन सकती।

प्रश्न – आप उसके साथ क्या आहार पानी भी करोगे ?

उत्तर – अवश्य। आहार पानी भी करूंगा और उसकी वैयावृत्य भी करूंगा। आप किसी हरिजन को जो जैन साधु बनना चाहे उसे मेरे पास लाएं। उसकी योग्यता तथा श्रद्धा को देख कर – उसे योग्य समझूंगा तो दीक्षा दे दूंगा। उत्तराध्ययन सूत्र साक्षी है कि जैन धर्म में चाण्डालों की दीक्षा हो चुकी है। हरिकेश मुनि चांडाल ही थे।

सोवागकुलसंभूओ गुणुत्तरधरो मुणी।
हरिएसबलो नाम आसि भिक्खू जिइन्दिओ ॥१॥

– उत्तराध्ययन सूत्र, १२वां अध्ययन

अर्थात् – चंडाल कुल में उत्पन्न होने पर भी उत्तम गुण के धारक हरिकेशबल नामक जितेन्द्रिय साधु हुए।

प्रश्न – हरिकेश मुनि के संबंध में कुछ लोग यह संशय करते हैं कि वे तो एकाकी थे, वे मुनि संघ के साथ कहां रहते थे।

उत्तर – संशयकर्त्ताओं की शंकाएं निर्मूल हैं। क्या वे उन्हें देखने गये थे कि वे एकाकी थे या मुनि संघ के साथ थे। यदि एकाकी थे तो भी वे अत्यन्त ही गुणवान एवं आदर्श पुरुष थे – तभी तो शास्त्रों में उनकी प्रशंसा की गई है। जिनके दर्शनमात्र से पाप दूर हट जायें तो बताइये उनकी चरणसेवा में कितना लाभ होगा।

सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो न दीसई जाइविसेस कोई ।
सोवागपुत्तं हरिएससाहुं जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा ॥३७॥

— उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन १२

भावार्थ — सचमुच दिव्य तप की यह प्रत्यक्ष विशेषता दिखाई देती है, जाति की विशेषता नहीं। चण्डालपुत्र हरिकेश साधु जिसकी ऐसी ही महाप्रभावशाली समृद्धि है।

प्रश्न — आज विद्यार्थी-जगत् में असंतोष क्यों है ?

उत्तर — हम इसकी जिम्मेदारी विद्यार्थी-जगत् के गुरुओं पर डालते हैं। क्या आज का गुरु अंग्रेज राजनीतिज्ञ मेकाले की कूटनीति का शिकार नहीं है ? गुरु मातृभाषा में शिक्षा देने से क्यों मुंह मोड़ता है ? उसकी सांस्कृतिक जड़ें भारत में हैं या इंग्लैंड में। वह अपनी प्राचीन थाती को क्यों भूल रहा है ? उसे 'आचार्य देवो भव' की महापदवी कौन सी परम्परा प्रदान करती है ? वह क्यों नहीं गुरुकुल-प्रणाली का प्रचार करता है —

प्रश्न — क्या आधुनिक युग में गुरुकुल प्रणाली चल सकती है ?

उत्तर — यदि नहीं चल सकती है तो सारे विनाश को स्वीकार करो। गुरुकुल प्रणाली शब्द से चौंकिये मत। गुरुकुल प्रणाली वह है जिसमें विनयपूर्वक विद्या सिखाई जाती है। गुरु को सब कुछ समझो। उसकी आज्ञा सर्वोपरि है। विद्या वही है जो अमृत तत्त्व को दे।

'सा विद्या या विमुक्तये।'

यावज्जीवन गुरु की उपासना करते रहो। उसकी विनय करते रहो—

अभ्युत्थानं तदालोकेऽभियानं च तदागमे ।
शिरस्यञ्जलिसंश्लेषः स्वयमासनढौकनम् ॥१२५॥
आसनाभिग्रहो भक्त्या वन्दना पर्युपासना ।
तद्यानेऽनुगमश्चेति प्रतिपत्तिरियं गुरोः ॥१२६॥

— योगशास्त्र, तृतीय प्रकाश

अर्थात् गुरु को देखते ही खड़े हो जाना, आने पर सामने जाना, दूर से ही मस्तक पर अंजलि जोड़ना, बैठने के लिये स्वयं आसन

प्रदान करना, गुरु के बैठ जाने के बाद बैठना, भक्तिपूर्वक वंदना और उपासना करना, उनके गमन करने पर कुछ दूर तक अनुगमन करना, यह सब गुरु की भक्ति है।

प्रश्न – ऐसे गुरु और शिष्य का तो आजकल अभाव सा है।

उत्तर – अभाव ही विद्यार्थी असंतोष का कारण है। आज का गुरु अर्थकरी विद्या का प्रचारक है। वह अनात्मज्ञ है। उसे मालूम नहीं कि वह किस परम्परा का वाहक है। यदि भारत गुरु याज्ञवल्क्य की गद्दी का हकदार है तो उसे शिष्य को कृतार्थ करके ही धन लेना चाहिए।

प्रश्न – कृतार्थ से आपका अभिप्राय क्या है ?

उत्तर – शिष्य को अपने समान विनयी और कर्मठ बनाकर ही उससे दक्षिणास्वरूप धन लेने वाला।

प्रश्न – गुरुदेव, इस भौतिकवादी युग में गुरु का यह स्वरूप मिलना मुश्किल है।

उत्तर – ऐसी बात नहीं है। भारत में आज भी हजारों शिक्षक ऐसे हैं जो निर्धन होने पर भी हृदय के निर्धन नहीं हैं। मुझे ऐसे कितने ही शिक्षकों की जानकारी है जो अपनी ईमानदारी और कर्त्तव्य-परायणता से जनता और सरकार के प्रशंसाभाजन बने हैं। इस सरस्वती मंदिर में ऐसे शिक्षकों की नितांत आवश्यकता है जो कुव्यसनों जैसे – शराब, कबाब, गुलछर्रों और फैशनपरस्ती से दूर रहकर विद्यार्थियों को सुशिक्षा प्रदान करें क्योंकि माता-पिता ने अपने पुत्र-पुत्रियों को इन शिक्षकों को सौंपा है। इन शिष्यों के गुण-दोषों के कर्ता-धर्ता वे ही हैं। प्राचीन श्रुति है–

> "प्रमोदमनपूर्वदलंघ्य शिष्याध्याचार्यमागच्छति शिष्यदोषः।
> ज्ञानं हृदयं गुरवे प्रदातुर्नैवापराधोऽस्ति पितुर्न मातुः॥"

पूज्य महाराजजी !

आपके कार्यकलापों से यह स्पष्ट है कि आपश्री ने प्राचीन जैन मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया है और इसी पर विशेष जोर दिया है – इस संबंध में आपश्री की क्या मान्यता है ?

उत्तर—मेरी मान्यता है कि जीर्णोद्धार का काम बड़ा भारी महत्त्व का है। यह शास्त्रानुसार है और इसमें नवीन निर्माण की अपेक्षा नौगुणा पुण्य अधिक है।

आजकल कितने ही लोगों का जीर्णोद्धार की ओर ध्यान नहीं है यह बड़े दुःख की वात है।

एक वार मैंने शिवगंज में व्याख्यानान्तर्गत लोगों से पूछा कि आज जो नये मंदिर वना रहें हैं वे कभी न कभी पुराने तो होंगे ही। यदि नये मंदिर वनाने वाले जीर्णोद्धार में एक पाई भी खर्च नहीं करते हैं तो उनके नये मंदिरों का पुराने होने पर कौन जीर्णोद्धार कराएगा। यह वहुत सोचने की वात है।

प्रश्न—हमने सुना है कि आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी समस्त भारत में जीर्णोद्धार करवाती है और कल्याणक भूमियों की देखरेख भी करती है—क्या यह सत्य है ?

उत्तर—अरे, रहने दो। दूर के ढोल सुहावने लगते हैं। पेढ़ी में जितनी लाल फीताशाही चलती है उतनी तो सरकार के तंत्र में भी नहीं।

प्रश्न—गुरुदेव, ऐसी क्या वात है ?

उत्तर—मैं स्वयं इस लालफीताशाही का शिकार वन चुका हूँ। चार वर्ष पूर्व मेरे मन में प्राचीन कौशाम्वी तीर्थ के जीर्णोद्धार की भावना जागृत हुई। इस संवंध में मैंने उक्त पेढ़ी से पत्र-व्यवहार किया जिसका प्रत्युत्तर मुझे वहुत देर से मिला और जो मिला भी तो चों-चों का मुरव्वा जैसा।

प्रश्न—गुरुदेव, यह चों-चों का मुरव्वा क्या है ?

उत्तर—यही कि पहिले सावित करो कि असली कौशाम्वी कहाँ है ? जिसे असली कौशाम्वी कहते हैं, वह नकली तो नहीं है ? इसकी प्रामाणिकता क्या है ? और जव कोई प्रामाणिकता ही नहीं है तो उस क्षेत्र में मंदिर क्यों वनाया जाय ? इस संबंध में मेरा पेढ़ी के साथ जो पत्र व्यवहार हुआ है—उसकी प्रतिलिपि आपके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ। प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता है ?

पत्र की प्रतिलिपियाँ – प्रथम पत्र

श्री वीतरागाय नमः

हस्तिनापुर तीर्थ
चैत वुदी ४, सन् ई० १९६२

देवगुरु भक्तिकारक, पुण्य प्रभावक सुश्रावक श्रीमान् केशवलाल लल्लूभाई मेनेजिंग ट्रस्टी, आणंदजी कल्याणजी की पेढ़ी योग्य,

मुनि वल्लभदत्त विजय का धर्म लाभ वांचिएगा। देवगुरु की कृपा से यहाँ आनन्द मंगल है। आप भी प्रसन्न होंगे। हमारा गत चातुर्मास पावापुरी तीर्थ में था। वहाँ से विहार कर काशी, प्रयाग, कौशाम्बी, कम्पिला, शौरीपुर तीर्थो की यात्रा करते हुए यहाँ आये हैं। कौशाम्बी तीर्थ के वारे में ही इस पत्र के द्वारा सूचना दी जा रही है, अतः पत्र पर ध्यान देकर योग्य उत्तर दीजियेगा। इलाहावाद से (कानपुर के रास्ते) १०।। माइल पर थाना मुफ्तीपुरा नामक ग्राम जो०टी० रोड पर आता है, वहाँ से ही कौशाम्वी को सड़क जाती है। कौशाम्बी यहाँ से २४ मील दक्षिण में यमुना नदी के किनारे पर वसा हुआ है। सराय अंकिल तक डामर रोड है, आगे कच्ची सड़क है जिसे पक्का वनाया जा रहा है। काम चालू है। यह वही कौशाम्वी है जिसका वर्णन जैन शास्त्रों में आता है। आजकल ग्रामीण जनता उसे कोसम के नाम से पुकारती है। भारत सरकार की तरफ से राजा उदयन के किले की खुदाई हो रही है, जिसमें अनेक प्राचीन वस्तुएं निकल रही हैं। धीरे-धीरे यह स्थान अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्तकर सांस्कृतिक केन्द्र वन रहा है। किले के क्षेत्र में एक दिगम्वर जैन मंदिर और धर्मशाला है और उससे चार मील दूर मोपसा की पहाड़ी पर पुराना जैन मंदिर भी है जिसका वहीवट दिगम्वर जैनों के हाथ में है। लगभग आज से दो सौ वर्ष पहिले यहाँ पर श्वेताम्वर जैनों का मंदिर भी था जिसमें वीस तीर्थंकरों की मूर्तियाँ थी। इसका वर्णन प्राचीन स्तवन मालाओं में आता है। आज तो यहाँ अपना कुछ भी चिह्न वाकी नहीं वचा है। ना मालूम कौनसी विपत्ति ने यह सब छिन्न-भिन्न कर दिया। कौशाम्वी नगरी में जैन धर्म की कौन-कौनसी घटना घटी है उन्हें लिख देता हूँ–

(१) श्री पद्मप्रभु भगवान के चार कल्याणक हुए हैं।

(२) भगवान महावीर देव को सती चन्दन बाला ने यहीं पारणा कराया था।

(३) साध्वी चंदनाजी तथा मृगावतिजी को केवलज्ञान यहीं हुआ था।

(४) सूर्य-चन्द्र मूल विमान से भगवान् महावीर के वंदन हेतु आए।

(५) भगवान् महावीर देव के भक्त महाराज उदयन यहीं हुए।

जब हमने वर्तमान कौशाम्बी की दशा देखी तो दिल पर अजीब सा असर हो गया। क्या जैन समाज अपनी कल्याणक भूमियों का उद्धार और रक्षण नहीं कर सकता? हमारा तो विश्वास है कि जैन समाज सब कुछ कर सकता है। सिर्फ साधु-मुनिराजों के मार्गदर्शन की जरूरत है। हमारा विचार है कि कौशाम्बी नगरी में एक भव्य जैन मंदिर तथा धर्मशाला का निर्माण किया जाय। निर्माण-कार्य में कम से कम चार लाख रुपया व्यय किया जाय। उक्त रकम को जैन समाज से चन्दा द्वारा पूरा किया जाय। लेकिन मंदिर निर्माण के बाद उसकी रक्षा तथा व्यवस्था का प्रश्न पैदा होता है। आसपास के (कानपुर, लखनऊ) व्यापारी जैन तो व्यवस्था करने में असमर्थ हैं। हमने उनसे पूछ लिया है। उन्होंने साफ इन्कार कर दिया है। अब हमारी दृष्टि सेठ आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी पर ही पड़ती है। वही तीर्थों की व्यवस्था संभालने में समर्थ है। यदि हमको कौशाम्बी के मंदिर का वहीवट पेढ़ी अपने हाथ में लेने का आश्वासन दे दे तो उसके बाद ही हम कार्य शुरू करें। निर्माण-कार्य में पेढ़ी से पूछकर ही सब कार्य किया जाएगा। मंदिर, धर्मशाला, प्रतिष्ठा आदि का सब काम हम करने को तैयार हैं। इसमें पेढ़ी को एक पैसा भी खर्च नहीं करना पड़ेगा सिर्फ सलाह पेढ़ी को देनी होगी। आप पुण्यवान श्रावक हैं, धर्म की दलाली करना सबका कर्त्तव्य है अतः आप पेढ़ी के कार्य-कर्त्ताओं से पूछकर हमें योग्य उत्तर देंगे। आपकी थोड़ी सी दलाली में प्राचीन तीर्थ का उद्धार हो जाएगा। मेरा विशेष परिचय जानना हो तो पुण्यवान श्रावक जीवतलाल प्रतापसिजी से पूछने पर प्राप्त होगा। देवदर्शन में याद करें—

ओम् शान्ति

द० वल्लभदत्त विजय

उत्तर–

पूज्यवन्त महाराज श्री वल्लभदत्त विजयजी,

मु० हस्तिनापुर,

वंदना साथ लिखना कि आपका पत्र प्राप्त हुआ। कल्याणक भूमि का उद्धार करने की बाबत में सब कोई संमत है। लेकिन आप लिखते हैं कि करीब दो सौ साल से वहां श्वेताम्बर जैनियों का नाम-निशान नहीं है और आज पर्यन्त कितने ही मुनि महाराज वहां विचरे होंगे फिर भी ऐसी महत्वपूर्ण बाबत किसी के ध्यान पर क्यों नहीं आया। वे हमारी समझ में नहीं आते। हम समझते हैं कि वैशाली का स्थल का प्रश्न माफिक इस प्रश्न पर भी विवाद होने की संभावना देखकर किसी ने भी यह काम करना उचित नहीं समझा होगा। ऐसी परिस्थिति में जो कुछ करना हो वह सम्पूर्ण विचार करके करना जरूरी है। व्यवस्था के बाबत में इतनी दूरी से वहां का इन्तजाम करने की जुम्मेदारी पेढ़ी नहीं स्वीकार सकती है। अगर वहां के कोई व्यक्ति और संस्था इन्तजाम करने को तैयार होंगे तो उनको सलाह सूचना और जरूरी मदद दे सकते हैं।

लि० केशवलाल लल्लुभाई ना
१००८ वन्दना स्वीकारशोजी।

पत्र २ श्री वीतरागाय नमः

हस्तिनापुर
चैत सुदी २ ई० सं० १९६२

सुश्रावक देवगुरु भक्तिकारक धर्मप्रेमी केशवलाल लल्लूभाई योग्य। मुनि वल्लभदत्त विजय आदि का धर्म लाभ वांचिएगाजी। देव गुरु धर्म की कृपा से यहां आनन्द मंगल है। आप भी प्रसन्न होंगे। आपका पत्र मिला है। समाचार अवगत हुए हैं। आपने कौशाम्बी के स्थल के बारे में जो शंका उपस्थित की है वह बिल्कुल निर्मूल है। हमारे जैन मुनियों को कौशाम्बी का पहिले भी पता था और आज भी है।

मुनिराज त्रिपुटीजी ने जैन तीर्थ ना नक्शा नामक पुस्तक में कौशाम्बी के बारे में जो विवरण दिया है वह सब सत्य है। आधुनिक जितने भी इतिहासज्ञ हैं वे सब कौशाम्बी के स्थल के सम्बन्ध में एकमत हैं। विवाद का कोई प्रश्न ही नहीं है। पू० उपाध्याय देवेन्द्र सागरजी

महाराज तथा पन्यास धर्मसागरजी गणिवर्य ने ही हमें प्रेरणा की है। हमने उसी (पुस्तक) के आधार से कौशाम्बी के दर्शन किये हैं।

कौशाम्वी ग्रान्ड ट्रंक रोड से २४ मील दक्षिण-पश्चिम में है। पहिले रास्ता खराव था (अब पक्की सड़क बन रही है) इसलिये साधु साध्वी कम आते जाते थे। अब रास्ता ठीक हो रहा है अतः साधु-साध्वी उधर जायेंगे। कौशाम्वी में स्थित पभोसा की पहाड़ी पर जैन मंदिर हैं (जिसका वहीवट दिगम्बर जैनों के हाथ में है) वह अत्यन्त प्राचीन है। उसके शिलालेखों से भी सही स्थिति प्रकट होती है। भारत का पुरातत्व विभाग राजा उदयन के प्राचीन दुर्ग की खुदाई करा रहा है। उससे भी कौशाम्वी का सत्य स्थान प्रकट हो गया है। हम आपको भारपूर्वक लिखते हैं कि कौशाम्वी स्थल के बारे में जैन-अजैन किसी भी विद्वान् में मतभेद नहीं है। हाँ आपके दिमाग में मतभेद खड़ा हो गया हो तो आप उसे शीघ्र हटा दें। आप धर्मप्रेमी श्रावक हैं। आपसे हमें बड़ी उम्मीद है। किन्तु आप दिल में तीर्थप्रेम की ज्योति जगा कर कौशाम्वी की पवित्र भूमि के दर्शन करोगे तो अज्ञान का पर्दा स्वयं नष्ट हो जाएगा। प्राकृतिक प्रकोप एवं धर्म विरोधियों के आक्रमणों से तीर्थ भूमियों को नुकसान हुआ है किन्तु तीर्थप्रेमी जैनों ने पुनः पुनः तीर्थों का उद्धार कर धर्म-चिह्नों को सुरक्षित रक्खा है।

आपने जैन इतिहास में पढ़ा होगा कि तीर्थराज सिद्धाचल पर भी बौद्धों का वहुत वर्षों तक अधिकार रहा था। उस समय भी वौद्धों ने जैनों के सव नाम-निशान मिटा दिये थे किन्तु पू० मल्लवादी सूरिजी ने वौद्धों को शास्त्रार्थ में हरा कर पुनः तीर्थ का निर्माण कराया था। हम भी पू० मल्लवादी के अनुयायी हैं; क्या हम कौशाम्वी का निर्माण नहीं करा सकते ? उसका उद्धार नहीं करा सकते ?

इस प्रदेश में ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है जो कौशाम्बी के भावी मंदिर का वहीवट कर सके क्योंकि कानपुर आदि में सब व्यापारी लोग वसे हैं। उन्हें अपनी रोटी-रोजी से ही फुर्सत कहां है ? अब एक सेठ आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी ही ऐसी है जो तीर्थ-भूमियों की रक्षा और व्यवस्था कर सकती है। ना मालूम वह इस संवंध में टालम-टोल क्यों कर रही है ? आप लिखते हैं कि व्यवस्था की जुम्मेवारी दूर होने से नहीं स्वीकारी जा सकती। उत्तर में मालूम होवे कि काशी

में की अंग्रेजी कोठी की व्यवस्था पेढ़ी ने कैसे स्वीकार कर ली ? वहां दूरी का प्रश्न पैदा क्यों नहीं हुआ ? कौशाम्वी तो काशी और कानपुर के मध्यम में स्थित है । फिर वहां दूरी की वात क्यों की जाती है ? आज पेढ़ी सैकड़ों मंदिरों का कुशल वहीवट कर रही है। उसकी व्यवस्था में किसी तरह की कमी नहीं है तभी नव्य निर्माण की व्यवस्था के लिये आपसे आग्रह किया जा रहा है । आप प्रौढ़ श्रावक हैं एवं कुशल वहीवटदार हैं अतः पेढ़ी के कार्यकर्त्ताओं से पूछकर हमें उत्साहवर्धक उत्तर देंगे ऐसी आशा है । देवदर्शन में याद करें ।

द० मुनि वल्लभदत्त विजय का धर्मलाभ ।

उत्तर–

टेली { ग्राम
फोन २४१७

सेठ आनन्दजी कल्याणजी
हिन्दुस्तान ना समस्त श्वेताम्बर
मूर्तिपूजक जैन कोम ना प्रतिनिधि
प. नं. ४१०६

पो. ओ. नं. ५१, झवेरीवाड़
अहमदावाद, ता. १४–५–६२

पूज्य महाराज श्री वल्लभदत्त विजयजी नी सेवा मां

वंदना साथ लखवानुं के आपनो चैत्र सुदी ३ ई० सं० १९६२ नो पत्र मल्यो छे । तेमाँ लखेली हकीकत शे० श्री कस्तुर भाई ने जाहेर करतां तेओश्री नुं एवुं मंतव्य छे के ज्यां कोई संभालनार ना होय त्यां नवीन देरासर वनाववुं तो योग्य नथी ।

१००८ वार वंदन
मैनेजर

टिप्पणी – उपर्युक्त पत्र-व्यवहार से स्पष्ट है कि मुनिराजजी प्राचीन संस्कृति के अनन्य पुजारी हैं । जीर्णोद्धार को वे इसलिए महत्त्वपूर्ण मानते हैं कि प्राचीन भग्नावशेषों में हमारी महिमा मंडित संस्कृति सुपुप्त पड़ी है । इस पुनीत कार्य से वर्तमान और भावी पीढ़ी को देश की आध्यात्मिक संस्कृति के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है और आधुनिक युग की भौतिकवादी चकाचौंध से दूर हट कर युग-निर्माण में आगे बढ़ सकते हैं। प्रसिद्ध विद्वान् श्री वासुदेव शरण अग्रवाल ने देश की पुरानी संस्कृति को 'आलोकमय अतीत' कहा है जिसमें वर्तमान को प्रकाशित करने की क्षमता है ।

मुनिराज के पत्रों में कौशाम्बी के जीर्णोद्धार की तीव्र उत्कंठा और हार्दिक तड़पन दिखाई देती है । काश, आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी इस संत

पुरुष की धड़कन को समझती तो पता लगता कि यह कार्य कितना आवश्यक था। इस कल्याणक भूमि के दर्शनमात्र से जो अविरल आनन्द का अनुभव होता है वह मुनिराज के पत्र से विदित है। 'दूर के ढोल सुहावने लगते हैं' कथन में मुनिजी का कटु अनुभव झलक रहा है। कितना अच्छा होता यदि जैन समाज नूतन प्रासादों के बदले इन प्राचीन मंदिरों की रक्षा करता। मुनिराज यही कर रहे हैं और उनका यह मन्तव्य स्तुत्य है।

प्रश्न – आपका विहार-क्षेत्र कहां तक रहा है? कृपा कर अपने अनुभव सुनाइये।

उत्तर – बहुत दूर तक। ठेठ दिल्ली से गंगा सागर तक। मैंने एक बार पैदल भारत की परिक्रमा की है। दो वार सम्मेत शिखर की यात्रा की है। लगभग दस हजार मील पैदल चला हूं। आजकल लोग पदयात्रा का भी आत्म-विज्ञापन किया करते हैं मानो यह कोई नई चीज हो। जैन साधु का पैदल चलना ही धर्म है। जव तक उसके पैरों में चलने की ताकत रहेगी तब तक वह चलता रहेगा। जव जंघा-वल समाप्त हो जायेगा तब वह अपने आप ही कहीं स्थिर हो जाएगा। आज मेरी साठ-बासठ वर्ष की उम्र है फिर भी पन्द्रह मील प्रतिदिन उपधि का दस सेर वजन उठाकर चल सकता हूं। सर्वप्रथम मैंने पाली से सन् ५१ में शिखरजी की यात्रा पैदल ही की थी। आनेजाने में लगभग ३००० मील का चक्कर लगाया था। इस यात्रा में दो वर्ष लगे थे। दूसरी यात्रा मैंने आज से आठ वर्ष पहले की थी। इसमें गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, मद्रास, आंध्र, उड़ीसा, बंगाल और विहार होते हुए मैं सम्मेत शिखरजी पहुंचा था। इन यात्राओं का मैंने कभी भी आत्म-विज्ञापन नहीं किया। क्या सहज क्रिया का भी आत्म-विज्ञापन किया जा सकता है।

प्रश्न – इन यात्राओं में आपको कड़वे-मीठे अनुभव हुए होंगे–कहने की कृपा करें।

उत्तर – हां हुए हैं। आज तो समय बहुत हो गया है– फिर कभी कहूंगा।

टिप्पणी – मुनिश्री की सम्मेत शिखरजी की यात्रा का रोचक वर्णन द्वितीय खंड में पढ़िए।